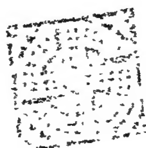
नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥



// श्री महावीराय नमः //

// जय नानेश //   // जय रामेश //

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 4

संकलनकर्ता
मदनलाल कटारिया

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग -4

संस्करण - पंचम संस्करण, वर्ष 2008

प्रतियाँ - 5100

मूल्य - रुपये 5/-

अर्थ सौजन्य : शासननिष्ठ दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री विमलचन्दजी सोहनलालजी सिपाणी परिवार

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.) फोन-0151-2544867, 3292177

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार

समता भवन, नौलाईपुरा, रतलाम-457001 (म.प्र.) फोन-07412-244443

Sampat Nursing Home

4, Nachiappa Street, Mylapore, CHENNAI-600004 ☎ : 4980572, 498002, 4980578

श्री सोहनलालजी विमलचंदजी सिपाणी

831, 13th मेन II ब्लॉक, कोरमंगला, बैंगलोर

☎ 25537878 (नि.), 25537833 (ऑ.)

श्री जवाहर मित्र मण्डल

उन बजार, ब्यावर जिला अजमेर (राज.)

श्री सायरचन्दजी छल्लाणी

पारसमनी, 4 वेस्ट प्रतापनगर, मेन पटेल नगर, न्यू देहली

☎ 0124 - 5052629, 011 - 25883344

श्री पृथ्वीराज जी पारख

पारख ट्रेडर्स, आपापुरी, कचहरी रोड पो. दुर्ग - 491001

फोन : (0788) 2324255 (नि.) 2324554 (ऑ)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर - 334005 (राज.)

फोन : (0151) 2544867, 3292177

मुद्रक

[illegible] प्रिन्टर्स प्रा. लि., 109, स्टेशन रोड, रतलाम (म. प्र.)

फोन : (07412) 230957

भूमिका....

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं, जिनमें 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' भी एक है, सन् 1974 से ये परीक्षा निरन्तर चल रही है। जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म.सा. से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नये पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमें भाग 1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन कर जीवन में कुछ पा सकेंगे ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक-से-अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान प्रदान करें। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम	-	भाग 1 से 12 तक
2 योग्यता	-	ज्ञानार्जन का अभिलाषी
3. परीक्षा का समय	-	माह आसोज, विदी पक्ष
4. श्रेणी निर्धारण		
विशेष योग्यता	-	75% से 100%
प्रथम श्रेणी	-	60% से 74%
द्वितीय श्रेणी	-	46% से 59%
तृतीय श्रेणी	-	35% से 45%
5. परीक्षा फल	-	परीक्षा फल का प्रकाशन पत्रिका श्रमणोपासक में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।
6. प्रमाण-पत्र	-	सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवाये जाएंगे।
7. पारितोषिक	-	प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा प्रोत्साहन पुरस्कार।

अनुक्रम

क्रं.	विभाग	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	सूत्र विभाग		35
	1. प्रतिक्रमण सूत्र विधि सहित	1	
	2. प्रतिक्रमण सम्बन्धी ज्ञातव्य बिन्दु (तत्थ)	23	
	3. प्रतिक्रमण सम्बन्धी प्रश्नोत्तर	24	
II	तत्त्व विभाग		25
	1. समकित के 67 बोल	26	
	2. तीर्थंकर के 20 बोल	32	
	3. पुण्यवान को प्राप्त 10 उत्तम सामग्री	33	
III	कथा विभाग		10
	1. भगवान ऋषभदेव	34	
	2. अर्जुन माली	40	
	3. ढंढण मुनिवर	42	
IV	काव्य विभाग		15
	1. भक्तामर स्तोत्र (32 गाथा)	44	
	2. रत्नाकर पच्चीसी 13 गाथा	49	
	3. अरिहंत जय-जय	51	
	4. कर्मों का खेल	51	
	5. वीर वंदना	52	
V	सामान्य ज्ञान विभाग		15
	1. लेश्या का स्वरूप	53	
	2. संथारा (समाधिमरण)	56	
	3. आत्महत्या और संथारे में अंतर	58	
	4. समय	61	
	नमूने का प्रश्न-पत्र		

सूत्र विभाग

1. श्रावक-प्रतिक्रमण

।। इच्छामि णं भंते का पाठ ।।

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं* पडिक्कमणं ठाएमि, देवसिय णाण दंसण चरित्ताचरित्त तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

।। इच्छामि ठामि का पाठ ।।

इच्छामि ठाइउं (ठामि) काउस्सग्गं** जो मे देवसिओ *** अइयारो कओ, काइओ, वाइओ माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो 'नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

।। ज्ञान के अतिचारों का पाठ ।।

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार के आगम रूप ज्ञान के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउंजं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीण,

---

* जहाँ-जहाँ देवसियं शब्द आवे वहाँ-वहाँ देवसियं के स्थान पर सुवह के प्रतिक्रमण में 'राइयं' पाक्षिक में 'पक्खियं' चातुर्मासिक में 'चाउम्मासियं' और सांवत्सरिक में 'संवच्छरियं' शब्द बोलना चाहिये।

** कायोत्सर्ग के पहले 'इच्छामि ठाइउं 'काउस्सगं' और कायोत्सर्ग में 'इच्छामि आलोउं' तथा अन्य स्थानों पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' बोलना चाहिये।

*** जहाँ-जहाँ भी 'देवसिओ' शब्द आवे वहां शाम के प्रतिक्रमण में 'देवसिओ' सुवह के प्रतिक्रमण में 'राइओ' पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिओ' चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिओ' और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में ''संवच्छरिओ'' पाठ बोलना चाहिये।

घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाइयं, सज्झाइए न सज्झाइयं भणतां गुणतां विचारतां ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

।। दर्शन सम्यक्त्व का पाठ ।।

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ।।1।।
परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा, य सम्मत्त-सद्दहणा ।।2।।

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो, इस प्रकार श्री समकितरत्न पदार्थ के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1 श्री वीतराग के वचन में शंका की हो, 2 परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3 धर्म के फल में सन्देह किया हो, 4 परपाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5 परपाखण्डी का परिचय किया हो। मेरे सम्यक्त्वरूप रत्न पर मिथ्यात्वरूपी रज मैल लगा हो तो जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

बारह व्रतों के अतिचार

पहला स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. रोषवश गाढ़ा बंधन बांधा हो, 2. गाढ़ा घाव (डाला) घाला हो, 3. अवयव (चाम आदि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. भात पानी का विच्छेद किया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। (अर्थात् जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उससे उत्पन्न हुआ मेरा पाप निष्फल हो।)

एकान्त में गुप्त वात-चीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3.अपनी स्त्री के मर्म* (गुप्त वात) प्रकाशित किये हों, 4. मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, 5. झूठा लेख लिखा हो, जो में देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा स्थूल अदत्तादान-विरमण-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्य विरुद्ध काम किया हो, 4. खोटा तोल खोटा माप किया हो, 5 . वस्तु में भेल-सम्भेल (मिलावट) की हो, जो में देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथा स्थूल स्वदार संतोष परदार ** विवर्जनरूप मैथुन व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं 1. इत्तरियपरिग्गहिया *** से गमन किया हो। 2. अपरिग्गहिया **** से गमन किया हो, 3. अनंगक्रीड़ा की हो, 4 पराये का विवाह कराया हो, 5. कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो। जो में देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पांचवाँ स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो

---

* स्त्री वोले कि अपने पति का मर्म प्रकाशित किए हो।

** स्त्री को 'स्वपतिसंतोष पर-पुरुष विवर्जनरूप' बोलना चाहिये।

*** शंका-'परा:-स्वस्त्रियो भिन्ना:-दारा:-परदारा:, तेषां विवर्जनं परदारविवर्जनं' अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्री से भिन्न सब स्त्रियाँ पर स्त्री हैं। उन सबका त्याग करना परस्त्री त्याग कहलाता है। इस व्याख्या से वेश्या, विधवा, पासवान, कन्या आदि परस्त्री हैं। फिर उनके सेवन को यहाँ अनाचार न कहकर अतिचार क्यों कहा है ?
उत्तर - उपासकदशांङ्ग की टीका में लिखा है - ''अतिचारतोऽयातिक्रमादिभि:' अर्थात् इत्तरियपरिग्गहिया गमणे और परिगहियागमणे को यहाँ जो अतिचार कहा है, सो, अतिक्रमण आदि की अपेक्षा से है। तात्पर्य यह है कि अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार से व्रत एक देश खंडित होता है और अनाचार से सर्वथा भंग हो जाता है। परस्त्री सेवन का संकल्प करना अतिक्रम है, उद्योग करना व्यतिक्रम है और आलाप, संलाप आदि करना अतिचार है। यहाँ अतिचार का प्रकार है, अत: इत्तरियपरिग्गहियागमण का अतिचार रूप अर्थ यह है - ''थोड़े काल के लिए अपनी बनाने के लिये तथा अल्पवयवाली अर्थात् जिसकी उम्र अभी भोग योग्य नहीं हुई, ऐसी अपनी विवाहिता स्त्री से गमन करने के लिए आलाप, संलाप आदि करना' तथा अपरिग्गहियागमन का अतिचार रूप अर्थ है - 'वेश्या आदि के साथ रमण करने के लिए तथा जिस कन्या के साथ सगाई तो हुई है। किन्तु अभी विवाह नहीं हुआ है, ऐसी कन्या के साथ गमन करने के लिए आलाप, संताप, आदि करना सुई-डोरा के न्याय से सेवन करने पर व्रत सर्वथा भंग हो जाता है इसलिए इन अतिचारों से वचने के लिए वेश्या, पासवान, विधवा आदि किसी भी परस्त्री के साथ एकान्त में या दुष्ट भाव से आलाप, संलाप नहीं करना चाहिए, न मार्ग में साथ चलना चाहिए।'
जहाँ-जहाँ स्त्री शब्द आया है, वहाँ-वहाँ स्त्रियों को 'पुरुष' शब्द वोलना और समझना चाहिए क्योंकि पुरुष का त्याग स्त्री के लिए और स्त्री का त्याग पुरुष के लिए मैथुन विरमण व्रत कहलाता है।

**** अपरिग्गहिया-अपरिगृहीता के साथ गमन (मैथुन) किया हो, ऐसा पुरुष को वोलना चाहिए तथा स्त्री को इत्तरियपरिग्गहिय इत्वरपरिगृहीत (थोड़े काल के लिये पति रूप स्वीकार किया हो) और अपरिग्गहिय अपरि॰ (पतिरूप स्वीकार नहीं किए हुए जार वगैरह) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा वोलना चाहिए।

आलोउं-1, खेत्तवत्थु का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, 2 हिरण्य सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धनधान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4 दोपद-चौपद (द्विपद चतुष्पद) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5 कुप्य (कांसी, पीतल, ताम्बा, लोहा आदि धातु का तथा इससे बने हुए वर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

छठे दिशिव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1 ऊंची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2 नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र वढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पंथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

सातवाँ उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं। 1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त पडिबद्ध का आहार कया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुष्पक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि का आहार किया हो। जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

पन्द्रह कर्मदान - जो श्रावक के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है। इनमें जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ।

1. इंगालकम्मे, 2 वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6 दन्त वाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे 10. विसवाणिज्जे 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निल्लंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया 14. सरदहतलाय सोसणया 15. असईजणपोसणया, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

आठवें अनर्थदंड-विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं।

1 , कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2 भंड-कुचेष्टा की हो, 3 मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण यानी हिंसाकारी उपकरणों का संग्रह किया हो, 5. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

नवें सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं 1-3 मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्त्तायें हो, 4. सामायिक की स्मृति न की हो, 5 समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

दशवाँ देशावकाशिक व्रत के विषय जो कोई अति चार लगा हो तो आलोउं-1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3 शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किए हों, 5. कङ्कर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़।

ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1 पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार पासवण की भूमि को देखी न हो या अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूंजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, 5.उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, जो मे देवसिओ अंईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

बारहवें अतिथिसंविभाग-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-1 अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2 अचित्त वस्तु सचित्त से ढांकी हो, 3 साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4 दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे की कही हो, 5 ईर्ष्याभाव से दान दिया हो, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

संलेखना के पाँच अतिचारों का पाठ

अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

समुच्चय का पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के 5 दर्शन, (सम्यक्त्व) के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के- इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते-अजानते मन, वचन, काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं ।

अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान आलोउं- पहला प्राणातिपात, दूजा मृषावाद, तीजा अदत्तादान, चौथा मैथुन, पाँचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवाँ मान, आठवाँ माया, नवाँ लोभ, दसवाँ राग, ग्यारहवाँ द्वेष, बारहवाँ कलह, तेरहवाँ अभ्याख्यान, चौदहवाँ पैशुन्य, पन्द्रहवाँ परपरिवाद, सोलहवाँ रति-अरति, सतरहवाँ माया मृषावाद, अट्ठारहवाँ मिथ्यादर्शन शल्य, इन अठारह पाप स्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं ।

इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज़्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे

मिउग्गहं निसीहि 'अहो', 'कायं', 'काय', संफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो*, "जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमिखमासमणो ! देवसियं वइक्कमं * आवस्सियाए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए * तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो* कओ, तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स* अइयारस्स दुब्भासियदुच्चिंतियदुच्चिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि।

चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवलीप्ररूपित धर्म का शरणा।

चार शरणा, दुःख हरणा, और न शरणा कोय।
जो भवी प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय ॥

दंसण समकित का पाठ

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठ-परमत्थ-सेवणा वावि।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा।

* नोट- देवसियस्स के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण में " राइयस्स" पाक्षिक प्रतिक्रमण में "पक्खियस्स" चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में "चाउम्मासियस्स" संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरियस्स" पाठ बोलना।

एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं-संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

पहला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़कर निरपराधी को आकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणविच्छेए जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं-कन्नालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिज्जे (कूड़ी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं-सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए, मोसोवएसे कूडलेहकरणे जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं खात खन कर, गांठ खोल कर, ताले पर कूंची लगा कर, मार्ग में चलते को लूट कर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं- न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा

जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल्लुकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं* सदारसंतोसिए, अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं- न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं- न करेमि कायसा, एवं चौथा स्थूल स्वदार संतोष, परदार** विवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-इत्तरिय परिग्गहिया गमणे, अपरिग्गहिया गमणे*** अनंगकीड़ा, परविवाहकरणे, कामभोग तिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

पाँचवाँ अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं-खेत्तवत्थु का यथा परिमाण हिरण्ण सुवण्ण का यथा परिमाण, धन-धान्य का यथा परिमाण, दुपय-चउप्पय का यथा परिमाण, कुप्य का यथा परिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवाँ स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-खेत्तवत्थु प्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे धणधण्णप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुप्यप्पमाणाइक्कमे जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

छठा दिशिव्रत उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए

---

* सदार संतोसिए ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को सभत्तार संतोसिए ऐसा बोलना चाहिये जिसको सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन का त्याग हो, उसका 'सदार संतोसिए अवसेस मेहुणं विहि' के स्थान पर 'सव्वप्पगारं मेहुणं' बोलना चाहिए।

** श्राविकाएँ 'स्वपति संतोष पर पुरुष' विवर्जन रुप मैथुन कहें।

*** श्राविकाएँ - इत्तरियपरिग्गहियगमणे, अपरिग्गहिय गमणे कहें।

एगविहं**** तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा कायसा एवं छठे दिसिव्रत के पँच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं- उड्ढदिसि प्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी सइअन्तरद्धा, जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवाँ व्रत-उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. दंतणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि 5. उव्वट्टणविहि, 6. मज्जणविहि, 7. वत्थविहि, 8. विलेवणविहि, 9. पुप्फविहि, 10. आभरणविहि 11. धूवविहि, 12. पेज्जविहि, 13. भक्खणविहि 14. ओदणविहि, 15 सूवविहि, 16. विगयविहि, 17. सागविहि, 18. माहुरविहि, 19. जीमणविहि 20. पाणीयविहि, 21. मुखवासविहि, 22. वाहणविहि, 23. उवाणहविहि, 24. सयणविहि, 25. सचित्तविहि, 26. दव्वविहि, इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोगपरिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवाँ उवभोग परिभोग दुविहे पण्णत्ते तंजहा-भोयणाओ य, कम्मओ य भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओ य णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहा ते आलोउं इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणयकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सरदहतलायसोसणया, असईजणपोसणया जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आठवाँ अणट्ठादण्ड विरमणव्रत-चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते तंजहा- अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं आठवाँ अणट्ठादंड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार- आए वा, राए वा,

नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवाँ अणट्ठादंड विरमण व्रत के पंचअइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं- कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते, जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

नवमां सामायिक-व्रत सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है सामायिक का अवसर आए सामायिक करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं नवमें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दसवां देशावकाशिक व्रत- दिनप्रति प्रभात से प्रारंभ करके पूर्वादिक छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो,उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। जितनी भूमिका की हद रखी है, उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है,उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए रूवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे,जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषधव्रत - असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्णका पच्चखाण, मालावन्नग विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण,जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है पौषध का अवसर आए, पौषधकरूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं ग्यारहवां

ोपध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं ग्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय ज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिय प्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, जो मे वसिओ अईयारो कओ। तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवां अतिथिसंविभागव्रत-समणे णिग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं-असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थ-पडिग्गह-कंबलपाय-पुंछणेणं पडिहारिय-ीढफलगसेज्जा-संथारएणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा है, साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं तब शुद्ध होऊं एवं बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिआए जो में देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

वड़ी संलेखना का पाठ

अह भंते अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पूंजे, पूंजके उच्चार पासवण भूमिका पडिलेहे पडिलेह के गमणागमणे पडिक्कमे, पडिक्कम के दर्भादिक संथारा संथारे, संथार के दर्भादिक संथारा दुरूहे, दुरूह के पूर्व तथा उत्तर दिशिसन्मुख पल्यंकादिक आसन से बैठे, बैठ के करयल संपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं' ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं' जयवंते वर्तमान काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार करके अपने धर्माचार्यजी महाराज को नमस्कार करता हूँ। साधु प्रमुख चारों तीर्थों को खमाकर सर्व जीव राशि को खमाकर पहले जो व्रत आदरे हैं उनमें जो अतिचार दोष लगे हों, वे सर्व आलोय के, पडिक्कम के, निन्द के, निःशल्य होकर के, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि,

सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोहं माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि, सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चक्ख कर, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, ऐसे चारों आहार पच्चक्ख कर, जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं, पियं मणुण्णं, मणामं, धिज्जं विसासियं, संमयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्डकरण्डसमाणं, रयणकरंडगभूयं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा मा णं दंसमसगा, मा णं वाइयं, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका परीसहा उवसग्गा फासा फुसंतु, एवं पि य णं चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं वोसिरामि ति कट्टु ऐसे शरीर को वोसिरा कर कालं अणवकंखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, फरसना करूँ तब शुद्ध होऊं। ऐसे अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए तिविहेणं पंडिक्कंतो वन्दामि जिणचउव्वीसं।

पाँचों पदों की वन्दना

पहिले पद श्री अरिहन्त भगवान जघन्य बीस तीर्थङ्करजी, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सत्तर देवाधिदेवजी उनमें वर्तमान काल में बीस विहरमान तिर्थंकरजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं। एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौंतीस अतिशय, पैंतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बल वीर्य, दिव्य

* बारह व्रतों के 60 अतिचारों का विशेष खुलासा श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग ते, बोल नं. 301 से 312 तक में है।

ध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोक वृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्र धरावें, चंवर विजावें, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढ़ाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र में विचरें, जघन्य दो करोड़ केवली और उत्कृष्ट नव करोड़ केवली, केवलज्ञान, केवलदर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जाननहार।

सवैया - नमोश्री अरिहन्त, कर्मों का किया अन्त, हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी हैं। अतिशय चौंतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार, समझावे नर-नार, पर उपकारी है। शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार, गुण हैं अनन्त सार, दोष परिहारी हैं। कहत हैं तिलोकरिख, मन, वच, काया करी, लुलि-लुलि बारम्बार वन्दना हमारी है॥1॥

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वंदना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वन्दामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो! हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव परभव भवभव में सदा शरण हो।

भये अविकारी है। अचल अटल रूप, आवे नहीं भवकूप, अनूप सरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी हैं। कहत हैं तिलोकरिख, बताओ हे वास प्रभु, सदा ही उगंते सूर वन्दना हमारी है ॥2॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्त्जी आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। यावत् भव-भव में सदा शरण हो।

तीसरे पद श्री आचार्यजी महाराज छत्तीस गुण करके विराजमान, पाँच महाव्रत पालें, पाँच आचार पालें, पाँच इन्द्रिय जीतें, चार कषाय टालें, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पालें, पाँच समिति, तीन गुप्ति शुद्ध आराधें। ये 36 गुण और आठ सम्पदा 1 आचार सम्पदा, 2 श्रुत सम्पदा, 3 शरीर सम्पदा, 4 वचनसम्पदा, 5 वाचनासम्पदा, 6 मतिसम्पदा, 7 प्रयोगमतिसम्पदा, 8. संग्रहपरिज्ञासम्पदा सहित हैं।

सवैया - गुण है छत्तीस पूर, धारत धरम ऊर, मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है। शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त, भण्या है सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है। अधिक मधुर वैण, कोई नहीं लोपे-केण, सकल जीवों का सेण, कीरत अपारी है। कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख, ऐसे आचारज ताकूं, वन्दना हमारी है ॥3॥

ऐसे श्री आचार्य महाराज न्यायपक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय अचित वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणों के अनुरागी, सौभागी हैं, ऐसे श्री आचार्यजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे आचार्यजी महाराज! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हूँ। तिक्खुत्तो यावत् भव-भव में सदा शरण हो।

चौथे पद श्री उपाध्यायजी महाराज पच्चीस गुण करके सहित ग्यारह अङ्ग, बारह उपांग, चरणसत्तरी, करण सत्तरी इन पच्चीस गुण सहित हैं तथा ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जानें, चौदह पूर्व के पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं। **ग्यारह अंग**-आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, विवाहपन्नति (भगवती), णायाधम्मकहा (ज्ञाता धर्मकथा), उवासगदसा, अंतगडदसा, अणुत्तरे

पण्हावागरण (प्रश्न व्याकरण), विवागसुय (विपाकश्रुत)।

बारह उपांग - उववाई, रायप्पसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूद्वीपपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया, कप्पवडिंसिआओ, पुप्फिआओ, पुप्फचूलिआओ, वण्हिदसाओ।

चार मूल सूत्र - उत्तरज्झयणाइं (उत्तराध्ययन), दसवेयालियं (दशवैकालिक सूत्र), णंदीसुत्तं (नन्दी सूत्र), अणुओगदाराइं (अनुयोगद्वार)।

चार छेद - दसाओ (दशाश्रुतस्कन्ध), बिहतकप्पो (बृहत्कल्प), ववहारो(व्यवहार सूत्र), निसीहं (निशीथ सूत्र) और बत्तीसवां आवस्सगं (आवश्यक) तथा अनेक ग्रंथ के जानकार, सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्य मत के जानकार, मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

सवैया - पढ़त इग्यारे अंग, करमों सूं करे जंग, पाखंडी को मानभंग, करन हुशियारी है। चवदे पूरव धार, जानत आगम सार, भवियन सुखकार, भमता निवारी है। पढ़ावे भविकजन, स्थिर कर देत मन, तप कर तावे तन, ममता निवारी है। कहत है तिलोकरिख ज्ञानभानु परतिख, ऐसे उपाध्याय ताकूं, वन्दना हमारी है।।4।।

ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्वरूप अंधकार के मेटनहार, धर्म [illegible] उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करें, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं, ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आप कि विनय भक्ति नहीं की अविनय आशातना की हो तो हे उपाध्यायजी महाराज ! मेरा अपराध क्षमा करिए, हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वंदना करता हूँ। तिक्खुत्तो पाठ भव-भव में सदा शरण हो।

वैराग्यवन्त, मनसमाधारणीया, वयसमाधारणीया, कायसमाधारणीया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पन्ना, चारित्तसम्पन्ना, वेदनीय समाअहियासनीया, मरणान्तियसमा अहियासनीया ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित हैं। पाँच आचार पालें, छह काया की रक्षा करें, सात भय त्यागें, आठ मद छोड़े, नव वाड़ सहित ब्रह्मचर्य पालें, दस प्रकार यति धर्म धारें, बारह भेदें तपस्या करें, सत्रह भेदे संयम पालें, अठारह पाप को त्यागें, बाईस परीषह जीतें, तीस महामोहनीय कर्म निवारें, तैंतीस आशातना टालें, बयालीस दोष टाल कर आहार पानी लेवें, सैंतालीस दोष टाल कर भोगें, बावन अनाचार टालें, तेड़िया (बुलाया) आवे नहीं, नेतिया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करें, नंगे पैर चले इत्यादि काय क्लेश करें और मोह ममता रहित है।

सवैया - आदरी संयम भार, करणी करे अपार, समिति गुपति धार विकथा निवारी है। जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय, बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है। ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम, धरम को करे काम, ममता कुं मारी है। कहत है तिलोकरिख करमों को टालें विख, ऐसे मुनिराज ताकूं वन्दना हमारी है।

ऐसे मुनिराजजी महाराज, आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे मुनिराज ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हूँ। तिक्खुत्तो यावत् भव-भव में सदा शरण हो।



।। दोहा ।।

अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता क्रोड़।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दूं बे कर जोड़ ।।1 ।।
दोय कोडि केवलधरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्त्र युगल कोड़ी नमूं, साधु नमूं निश दीश ।।2 ।।
धन साधु, धन साध्वी, धन-धन है जिनधर्म।
ये समर्यां पातक झरें, टूटे आठों कर्म ।।3 ।।
अरिहन्त ।।। . नमरूं सदा, आचारज उपाध्याय।

साधु सकल के चरण को, वन्दूं शीश नमाय ॥4॥
शासन नायक सुमरिए, भगवन्त वीर जिणंद।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥5॥
अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिए, वांछित फल दातार ॥6॥
लोभी गुरु तारे नहीं, तिरे सो तारण हार।
जो तूं तिरियो चाहे तो, निर्लोभी गुरु धार ॥7॥
पर उपकारी साधुजी, तारण तरण जहाज।
कर जोड़ी हूँ नित नमूं, धन मोटा मुनिराज ॥8॥
साधु सती ने शूरमा, ज्ञानी ने गजदन्त।
इतना पीछा ना हटे, जो जुग जाय अनन्त ॥9॥
गुरु दीपक गुरु चांदणो, गुरु बिन घोर अंधार।
पलक न विसरूं तुम भणी, गुरु मुझ प्राण आधार ॥10॥

आयरिय उवज्झाए का पाठ

**आयरियउवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥1॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलि करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥2॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहिय नियचित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥3॥
रागेण व दोसेण व, अहवा अकयण्णुणा पडिनिवेसेणं।
जं मे किंचि वि भणिअं, तमहं तिविहेण खामेमि ॥4॥**

अढ़ाई द्वीप का पाठ

अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में श्रावक-श्राविका तथा उनके बाहर तिर्यंच श्रावक-श्राविका दान देवें, शील पालें, तपस्या करें, शुभ भावना भावें, संवर करें, सामायिक करें, पौषध करें, प्रतिक्रमण करें, तीन मनोरथ चिंतवें, चौदह नियम चितारें, जीवादिक नव पदार्थ जानें श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त एक व्रतधारी, जाव बारहव्रतधारी, जो भगवान की आज्ञा में विचरे ऐसे बड़ों से हाथ जोड़, पैर पकड़कर क्षमा मांगता

हूँ। आप क्षमा करें। आप क्षमा करने योग्य हैं और छोटों से समुच्चय खमाता हूँ।

चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिंद्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य - ऐसे चार गति में चौरासी लाख जीव योनि के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त जीवों में से किसी जीव का हालते-चालते, उठते-बैठते, सोते-जागते, हनन किया हो, कराया हो, हनतां प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो तो मन, वचन, काया करके* देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

खामेमि सव्वे जीवा का पाठ (क्षमापना का पाठ)

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।।
एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगुंछियं सम्मं।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं।।

प्रायश्चित का पाठ

देवसिय पायच्छित विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं, साड्ढ पोरिसियं तिविहंपि चउविहंपि आहारं, असणं पाणं, खाइमं साइमं (अपनी-अपनी धारणा प्रमाणेपच्चक्खाण) अण्णत्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं,

---

* जीव तत्व के 563 भेदों को 'अभिहया वत्तिया आदि दस के साथ गुणा करने से 5630 भेद होते हैं। फिर इनको राग और द्वेष के द्विगुण करने से 11260 भेद बनते हैं। फिर इन्हीं को मन, वचन, काया के साथ त्रिगुणा करने से 33780 भेद हो जाते हैं। फिर इनको ही तीन करणों के साथ गुणा करने से 101340 भेद बन जाते हैं। इनको भी फिर तीन काल के साथ गुणाकार करने से 304020 भेद हो जाते हैं। फिर इनको अरिहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, गुरु और आत्मा इस प्रकार छह से गुणा करने पर 1824120 भेद बनते हैं अर्थात् इस प्रकार से मैं मिच्छामि दुक्कड़ं देता हूँ और फिर पापकर्म न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

सव्व समाहिवत्तियागारेणं * वोसिरामि।

अन्तिम पाठ

पहला सामायिक, दूसरा

चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पाँचवा कायोत्सर्ग, छठवाँ प्रत्याख्यान इन छः आवश्यकों में जानते अजानते कोई अतिचार दोष लगा हो तो देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं।

प्रतिक्रमण अविधि से किया हो, सूत्रविपरीत किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं, पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, न्यूनाधिक आगे पीछे कहा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण, इन पाँच प्रतिक्रमण में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो तथा चलते, फिरते, उठते, बैठते, पढ़ते, गुणते, जानते, अजानते, ज्ञान, दर्शन चारित्र तप सम्बन्धी कोई दोष लगा हो तो देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं।

गए काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल में संवरण ** और आगामी काल का पच्चक्खाण, इनमें जो कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शम संवेग निर्वेद, अनुकंपा, आस्था ये व्यवहार समकित के पाँच लक्षण है मैं इसे ग्रहण करता हूँ। देव अरिहंत गुरु निर्ग्रन्थ धर्म केवली भाषित सच्चे की श्रृद्धा और झूठे का बारम्बार देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं।

।। इति प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ।।

---

* स्वयं पच्चक्खाण करना हो अथवा दूसरों को कराना हो तो वोसिरामि ही बोले।

प्रतिक्रमण करने की विधि

(आचार्य भगवन् को) सर्वप्रथम तीन बार विधि युक्त वंदना करके (क्षेत्र विशुद्धि के लिए)

- अहो भगवन् ! चउवीसत्थव करने की अनुज्ञा है- नमस्कार मंत्र, इच्छाकारेणं तस्सउत्तरी बोलकर मन में दो लोगस्स का कायोत्सर्ग करे। "णमो अरिहंताणं" कहकर कायोत्सर्ग पालें। फिर नमस्कार मंत्र, कायोत्सर्ग विशुद्धि का पाठ, एक लोगस्स, दो बार णमोत्थुणं बोलें।
  फिर तीन बार वंदना करके कहे....
- अहो भगवन् ! प्रतिक्रमण करने की अनुज्ञा है- (खड़े होकर) इच्छामिणं भंते का पाठ बोलें फिर, तीन बार वंदना करके....
- अहो भगवन् ! प्रथम सामायिक आवश्यक करने की अनुज्ञा है- (खड़े होकर) नमस्कार मंत्र, करेमिभंते, इच्छामि ठामि, तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर 99 अतिचार (आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व, बारह स्थूल, छोटी संलेखना समुच्चय पाठ एवं अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि) का चिन्तन कायोत्सर्ग में करें तथा कायोत्सर्ग में तस्स- मिच्छामि दुक्कडं के स्थान पर 'तस्स आलोऊँ 'कहें' णमो अरिहतांण' बोलकर कायोत्सर्ग पालें तथा नमस्कार मंत्र व कायोत्सर्ग विशुद्धि का पाठ कहें। फिर तीन बार वंदना करके..
- अहो भगवन् ! दूसरा चउवीसत्थव आवश्यक करने की अनुज्ञा है (खड़े होकर) एक लोगस्स कहें फिर तीन बार वंदना करके...
- अहो भगवन् ! तीसरा वंदना आवश्यक करने की अनुज्ञा है- दो बार विधिपूर्वक खमासमणो देवें (विधि अगले पृष्ठ में देखें) फिर तीन बार वंदना करके..
- अहो भगवन् ! चौथे प्रतिक्रमणआवश्यक की अनुज्ञा है खड़े होकर* आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व, बारह स्थूल, 15 कर्मादान और छोटी संलेखना तथा समुच्चय पाठ बोलकर 18 पाप स्थान एवं इच्छामि ठामि तथा तस्स सव्वस्स का पाठ बोलकर फिर तीन बार वंदना करें।
- अहो भगवन् ! श्रावक सूत्र बोलने की अनुज्ञा है- (दाहिना घुटना खड़ा रखकर बैठें) नमस्कार मंत्र, करेमिभंते, चत्तारिमंगलम् (मांगलिक श्रवण) इच्छामिठामि, इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दसंण समकित, बारहव्रतों के अतिचार सहित पाठ फिर पल्यंकासन में बैठकर दोनों हाथ जोड़कर बड़ी संलेखना, अट्ठारह पापस्थान और इच्छामिठामि का पाठ कहें फिर खड़े होकर तस्स धम्मस्स तथा दो वार इच्छामि खमासमणो विधियुक्त देकर तीन बार वंदना करके...

---

* बैठकर प्रतिक्रमण करने वाले बायां घुटना खडा रखें।

- अहो भगवन्। भाव वंदना की अनुज्ञा है (पंचांग नमाकर) नमस्कार मंत्र, पांच पदों की भाव वंदना फिर पल्यंकासन में बैठकर अनंत चौबीसी आदि दोहे, आयरियउवज्झाए का पाठ, अढ़ाई द्वीप का पाठ, चौरासी लाख जीवयोनी का पाठ, 'खामेमी सव्वेजीवा का पाठ' इसके बाद 18 पापस्थान कहें फिर तीन बार वंदना करके...
- अहो भगवन्। पांचवें कायोत्सर्ग आवश्यक की अनुज्ञा है (खड़े होकर) प्रायश्चित का पाठ नमस्कार मंत्र, करेमिभंते, इच्छामि ठामि, तस्सउत्तरी के बाद कायोत्सर्ग में (देवसिक रात्रिक में 4, पाक्षिक में 8, चातुर्मासिक में 12, सांवत्सरिक में 20 लोगस्स का ध्यान करें) फिर काउस्सग पालकर नमस्कार मंत्र, ध्यान शुद्धि का पाठ, एक लोगस्स तथा दो बार विधिपूर्वक खमासमणों देवें फिर तीन बार वंदना करें...
- अहो भगवन्। छठवें प्रत्याख्यान आवश्यक की अनुज्ञा है- प्रत्याख्यान ग्रहण करें और प्रायश्चित स्वीकार करें। (पक्खी का प्रायश्चित 5 सामायिक, चौमासी का 1 पौषध या 32 सायायिक और संवत्सरी का 2 पौषध या 64 सामायिक का प्रायश्चित स्वीकार करें। जिसे अगली तिथी आने से पहले पूर्ण करना चाहिए।) इसके बाद अंतिम पाठों को बोलें, फिर दो बार णमोत्थुणं, गुरुवंदना करके, स्वधर्मी बन्धुओं से खमत-खामणा कर चौबीसी, स्वाध्याय और स्तवन आदि के द्वारा आत्मगुणों में वृद्धि करें।

खमासमणो की विधि

खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर इच्छामि खमासमणो का पाठ प्रारम्भ करें।

'अणुजाणह में मिउग्गहं' शब्द आवे वहां आसन से नीचे उतर कर (दोनों घुटने खड़े करना) कुछ आगे जाकर निसीहि शब्द बोलते हुए उत्कुटुक आसन से बैठे। फिर दोनों कोहनियों को घुटने के बीच रखकर दोनों हाथ जोड़, मस्तक नमाकर **'अहो', 'कायं', 'काय'** इन छह अक्षरों का उच्चारण करते समय तीन आवर्तन करें। मंद स्वर से **'अ'** अक्षर बोल कर अंजलि को बांये हाथ की तरफ से दांये हाथ की तरफ घुमाते हुए **'हो'** अक्षर ऊँचे स्वर से कहें। यह पहला आवर्त्तन हुआ, इसी विधि से **'का'** और **'यं'** दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से दुसरा आवर्तन, फिर **'का'** और **'य'** इन दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से तीसरा आवर्तन होता है। इसके बाद संफासं बोलते हुए दोनों हाथ लम्बे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श करें अथवा चरण स्पर्श करने की भावना मन में लाएं। फिर **'खमणिज्जो'** से लेकर **'दिवसो वइक्कंतो'** तक का पाठ बोलें। तत्पश्चात् **'ज त्ता भे', 'ज व णि ज्जं', 'च भे'** अक्षरों का उच्चारण करते हुए तीन आवर्तन पूर्व विधि अनुसार करें। उसके बाद **'खामेमि खमासमणो'** बोलते हुए दोनों हाथ लंबे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श करें अथवा चरण स्पर्श की भावना मन में लाएं। फिर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर लगाकर **'खामेमि'** से **'वइक्कमं'** तक पाठ बोलें और **'आवस्सियाए'** बोलते हुए खड़े होवें और शेष पाठ पूरा करें। इसी विधि से **इच्छामि खमासमणो** का पाठ दूसरी बार बोलें। ऊपर लिखे अनुसार ही छः आवर्तन करें, किन्तु इस बार **'आवस्सियाए'** शब्द नहीं कहें तथा **'आवस्सियाए'** शब्द आने पर खड़ा न होकर बैठे-बैठे ही गुरु के अवग्रह में पूरा पाठ समाप्त करें।

2.प्रतिक्रमण सम्बन्धी ज्ञातव्य बिन्दु (तथ्य)

1. निरवद्य स्थान पर जहां साधु-सतियांजी विराजमान हों तो वहां पर उनकी अनुज्ञा लेकर प्रतिक्रमण करें। अन्यथा जिस दिशा में अपने धर्मगुरु, धर्माचार्यजी विराजमान हो उस दिशा में वंदन नमस्कार करें। अन्यथा दिशा का ज्ञान नहीं हो तो उत्तर या पूर्व दिशा में तीन बार विधि युक्त वंदन-नमस्कार करके प्रतिक्रमण करने की अनुज्ञा (अनुमति) प्राप्त करें।
2. वंदना, नमोत्थुणं, खमासमणो, पच्चक्खाण की क्रिया आसन छोड़कर करना चाहिए।
3. रात्रि प्रतिक्रमण सूर्योदय के लगभग 1 मुहुर्त पहले प्रारंभ करते हुए सूर्योदय के पहले प्रत्याख्यान हो जाना चाहिए।
4. दिवस प्रतिक्रमण लगभग सूर्यास्त के साथ प्रारंभ करते हुए एक मुहुर्त में प्रत्याख्यान हो जाना चाहिए। (सामूहिक प्रतिक्रमण में अधिकतम 1 घंटा)
5. सामायिक व्रत, मंगलपाठ एवं प्रत्याख्यान साधु-साध्वीजी से ग्रहण करें यदि वे वहां विराजित नहीं हो तो बड़े श्रावक-श्राविका से लेवें, यदि वे भी नहीं हों तो स्वयं ग्रहण कर सकते हैं।
6. सामान्यतः सामूहिक प्रतिक्रमण में ध्यान के समय 99 अतिचार एवं लोगस्स की पाटियों का उच्चारण प्रकट रूप से करवाया जाता है। वह उचित प्रतीत नहीं होता। जिन श्रावक - श्राविका वर्ग को प्रतिक्रमण कंठस्थ हो वह कायोत्सर्ग में पाटियों का मन में चिन्तन करें एवं जिन्हें पाटियां कंठस्थ न हो तो वे उतने समय तक नमस्कार-मंत्र के स्मरण में लीन रहें।
7. कायोत्सर्ग के पूर्व तस्सउत्तरी पाठ का उच्चारण करते हुए " अप्पाणं वोसिरामि शब्द को मन में कहते हुए कायोत्सर्ग में लीन हो जावे एवं अन्य पाटियों का चिन्तन भी मन में करें। (होठ जिह्वा आदि का भी चलन नहीं होवें)
8. छट्ठे प्रत्याख्यान आवश्यक में यथा शक्ति नवकारसी, पोरसी, तिविहार चौविहार अथवा घड़ी दो घड़ी आदि कुछ न कुछ प्रत्याख्यान अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

3. प्रतिक्रमण संबंधी प्रश्नोत्तर

प्र. 1. प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ. 1. (1) प्रतिक्रमण शब्द का छोटा सा अर्थ है पुनः लौटना अर्थात् जाने अनजाने में लगे पाप कर्मों से पीछे हटना प्रतिक्रमण है।

(2) ग्रहण किए हुए व्रत-प्रत्याख्यानों में जिस मर्यादा का उल्लंघन हुआ हो उसे स्वीकार कर पुनः व्रतों में स्थिर होना प्रतिक्रमण है।

प्र. 2. प्रतिक्रमण क्यों किया जाता है ?

उ. 2. (1) इसका शास्त्रीय नाम आवश्यक सूत्र है। यह साधक के लिए प्रतिदिन क्रमशः दिन और रात के अंत में आवश्यक करने योग्य साधना है।

(2) इससे साधक अपनी भूलों का स्मरण कर पाप की कालिमा को धो डालता है।

(3) इससे साधक आत्मभावों में तल्लीन होकर समाधि में स्थित होता है, इसलिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

प्र. 3. प्रतिक्रमण किसका किया जाता है एवं किस पाठ से ?

उ. 3. 1. मिथ्यात्व 2. अव्रत 3. प्रमाद 4. कषाय एवं 5. अशुभ योग का प्रतिक्रमण किया जाता है।

यह मुख्यतः निम्न पाठों से क्रमशः किया जाता है, 1. दर्शन सम्यक्त्व एवं 18 पाप स्थान (मिथ्यादर्शनशल्य) आदि से 2. इच्छामिठामि (पंचण्हमणुव्याणं) एवं बारह व्रतों के पाठ आदि से 3. इच्छाकारेणं एवं इच्छामिठामि (तिण्हंगुत्तीणं) आदि से 4. इच्छामिठामि (चउण्हं कसायाणं) एवं 18 पाप स्थान आदि से 5. इच्छामि ठामि (काइयो, वाइओ,माणसिओ, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ) एवं कायोत्सर्ग पारने की पाटी (मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों) आदि से।

प्र. 4 काल की दृष्टि से प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उ.4 काल की दृष्टि से प्रतिक्रमण के पांच भेद हैं :-

1. देवसिक-दिन के अंत में किया जाने वाला दिन भर में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण।
2. रात्रिक- रात्रि के अंतिम मुहूर्त में किया जाने वाला रात्री में लगे हुए दोषों का

प्रतिक्रमण।

3. पाक्षिक- पक्खी को किया जाने वाला पन्द्रह दिन में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण।

4. चातुर्मासिक- कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा, आषाढ़ी पूर्णिमा को किया जाने वाला चार महीने में लगे दोषों का प्रतिक्रमण।

5. सांवत्सरिक- संवत्सरी को किया जाने वाला वर्ष भर में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण।

(नोटः पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण क्रमशः पक्खी, चातुर्मासी पूर्णिमा व संवत्सरी को सूर्यास्त के तुरंत बाद किया जाता है।

प्र.5 प्रतिक्रमण करने से क्या लाभ है ?

उ.5 1. व्रत में लगे दोषों से निवृत्ति होती है।

2. ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की आराधना होती है।

3. भावपूर्वक प्रतिक्रमण करते हुए उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन होता है।

प्र.6 प्रतिक्रमण में किए जाने वाले विभिन्न आसन किस-किस के प्रतीक स्वरूप हैं ?

उ.

प्रतिक्रमण के आसन	प्रतीक	पाठ
1 वाम (बांया) घुटना ऊंचा करना	विनय का प्रतीक	नमोत्थुणं
2 दायां घुटना ऊंचा करना	वीरता --,--	श्रावक सूत्र
3 दोनों घुटने खड़े करना	कोमलता --,--	इच्छामि खमासमणों
4 खड़े रहना (जिन मुद्रा)	तत्परता,उद्यम का --,--	बारह व्रतों का पाठ
5 दोनों घुटने जमीन पर टिका देना	अर्पणता का प्रतीक	पांच पदों की वंदना
6 पद्मासन/पल्यंकासन	स्थिरता, समाधि का ,	संलेखना

तत्त्व विभाग

1. समकित की शुद्धता हेतु 67 बोलों का विवेचन

सम्यक्त्व- संसार का स्वरूप जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकार करना सम्यक्त्व है। तीर्थंकर प्रभु जिन्हें केवलज्ञान प्राप्त है उन्होंने अपने ज्ञान से देखकर जो सही मार्ग बताया है उस पर श्रद्धा करना सम्यक्त्व है। उस सम्यक्त्व को व्यवहारिक रूप से स्वीकार करने हेतू ज्ञानियों ने 67 बोलों में विभक्त किया है सो निम्न प्रकार हैं - पहले बोले सम्यक्त्वी के श्रद्धान 4, दूसरे बोले लिंग 3, तीसरे बोले विनय 10, चौथे बोले शुद्धि 3, पाँचवें बोले लक्षण 5, छठे बोले दूषण 5, सातवें बोले भूषण 5, आठवें बोले प्रभावना 8, नौवें बोले आगार 6, दसवें बोले यतना 6, ग्यारहवें बोले स्थान 6, बारहवें बोले भावना 6। ये सभी मिलकर "67 बोल" हुए।

अब इनकी व्याख्या दी जाती है।

पहले बोले सम्यक्त्वी के श्रद्धान- 4

श्रद्धान- जिन कार्यों से धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हो और जिससे धर्म श्रद्धा सुरक्षित रहे।

1. **परमार्थ संस्तव**- परमार्थ का परिचय करें, अर्थात् नव तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करें।
2. **सुदृष्टपरमार्थ सेवन**- परमार्थ के जानने वालों की सेवा करें।
3. **व्यापन वर्जन**- जिसने सम्यक्त्व का वमन कर दिया (छोड़ दिया) हो उसकी संगति नहीं करे।
4. **कुदर्शन वर्जन**- कुतीर्थियों की संगति से दूर रहे।

(उत्तरा. अ. 28 गाथा 28)

दूसरे बोले सम्यक्त्वी के लिंग - 3

लिंग- जिन चिन्हों से सम्यक्त्व की पहचान हो। जैसे- धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान होना।

1. **श्रुतानुराग**- जैसे तरुण पुरुष राग रंग में अनुराग (रुचि) रखता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी श्रवण में अनुरक्त रहे।
2. **धर्मानुराग**- जैसे तीन दिन का भूखा मनुष्य मिष्ठान का भोजन रुचि सहित करता है उसी प्रकार चारित्र धर्म अंगीकार करने में विशेष रुचि रखें।
3. **देवगुरु वैयावृत्य**- जैसे अनपढ़ पुरुष विद्या गुरु को पाकर हर्षित होता है और

उनकी वैयावृत्य (सेवा) करता है उसी प्रकार सम्यक्त्वी भी ज्ञान प्राप्ति के लिए देवगुरु की वैयावृत्य करें।

(अनेक सूत्र व प्रवचन सारोद्धार)

तीसरे बोले सम्यक्त्वी के विनय - 10

विनय- देव गुरु एवं संघ के प्रति आत्मिक भावों से वंदन नमन करना।

1. अरिहंत विनय:- अरिहंत भगवान का गुण कीर्तन करना, उनके प्रति आस्था रखते हुए उनके उपदेशों को जानना एवं आचरण करना।

2. सिद्ध विनय :- सिद्ध भगवान का गुण कीर्तन करते हुए उनके स्वरूप के प्रति अहो भाव रखना।

3. आचार्य विनय :- आचार्य भगवन का गुण कीर्तन एवं वैयावृत्य करते हुए आज्ञा की आराधना करना।

4. उपाध्याय विनय:- उपाध्याय भगवन् का गुण कीर्तन एवं वैयावृत्य करते हुए ज्ञानादि सीखना।

5. स्थविर विनय :- स्थविर भगवन् का गुण कीर्तन एवं वैयावृत्य करते हुए यथायोग्य बहुमान करना।

6. कुल विनय :- एक गुरु के शिष्य समुदाय को कुल कहते हैं उनका विनय करना अर्थात् कुल की मर्यादा एवं अनुशासन का पालन करना।

7. गण विनय :- अनेक कुलों के समुदाय को गण कहते हैं उनका विनय करना अर्थात् गण की मर्यादा एवं अनुशासन का पालन करना।

8. संघ विनय :- अनेक गणों के समुदाय को संघ कहते हैं उनका विनय करना अर्थात् संघ की मर्यादा एवं अनुशासन का पालन करना।

9. साधर्मी विनय:- साधर्मी का गुण कीर्तन करना एवं ज्ञान, दर्शन, चारित्र में वैयावृत्य आदि द्वारा सहयोग पहुंचाना।

10.क्रियावान विनय:- क्रियावान का गुण कीर्तन करना एवं मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने की प्रेरणा देना तथा वैयावृत्य आदि द्वारा सहयोग पहुँचाना।

(ठाणांग सूत्र व औपपातिक सूत्र)

चौथे बोले सम्यक्त्वी की शुद्धि- 3

शुद्धि - सम्यक्त्व को और अधिक विशुद्ध बनाने के प्रयास को शुद्धि कहते हैं।

1. मन शुद्धि - मन से सुदेव, सुगुरु तथा निर्ग्रन्थ धर्म का ध्यान करें, परंतु अन्य किसी देव,गुरु, धर्म को मन में नहीं लाएं।

2. वचन शुद्धि - वचन में सुदेव, सुगुरु तथा निर्ग्रन्थ धर्म का गुणगान करें, किन्तु अन्य देव, गुरु, धर्म की प्रशंसा नहीं करे।

3. काया शुद्धि- काया से सुदेव, सुगरु तथा निर्ग्रन्थ धर्म को वन्दन नमस्कार करें, परन्तु किसी अन्य देव, गुरु, धर्म को वंदन नहीं करे।

(आवश्यक सूत्र व प्रवचन सारोद्धार)

पाँचवे बोले सम्यक्त्वी के लक्षण - 5

लक्षण - जिन गुणों से सम्यक्त्वी की आन्तरिक पहचान होती है। जैसे उष्णता से अग्नि की पहचान होती है।

1. शम (प्रशम) - अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय न होना।

सम - शत्रु - मित्र पर समभाव रखना।

2. संवेग - मोक्ष की अभिलाषा होना।

3. निर्वेद - संसार से उदासीन होना।

4. अनुकम्पा - दूसरे जीवों को दुःखी देख कर दया आना।

5. आस्था - जिन वचन पर दृढ़ विश्वास रखना।

(ठाणांग सूत्र 4 उत्तरा 29, ज्ञाता-1)

छठे बोले सम्यक्त्वी के दुषण- 5

दूषण - सम्यक्त्व को मलिन बनाने वाली प्रवृत्तियों अर्थात् जिससे सम्यक् रूप रत्न दूषित होता है जैसे रज से रत्न मलिन होता है।

1. शंका- जिन भगवान के वचनों में संदेह रखना दोष है।

2. कांक्षा- अन्यमतियों का आडम्बर देखकर उनकी चाहना करना दोष है।

3. विचिकित्सा- करणी (धर्म क्रिया) के फल में संदेह करना दोष है।

4. पर पाखण्डी प्रशंसा- अन्यमतियों की प्रशंसा करना दोष है।

5. पर पाखण्डी संस्तव- अन्यमतियों के साथ परिचय रखना और उनकी संगति करना दोष है।

(उपासग दशांग, आवश्यक सूत्र)

सातवें बोले सम्यक्त्वी के भूषण - 5

भूषण - जिन गुणों के द्वारा सम्यक्त्वी विशेष रुप से सुशोभित हो, जिस प्रकार आभूषणों से नारी अधिक सुन्दर दिखाई देती है।

1. कुशलता- जिन सिद्धांतों में निपुण होवें।

2. प्रभावना- जिन सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार कर गुणों को प्रगट करें।

3. तीर्थ सेवा- जिन शासन को मानने वाले साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रुप धर्मतीर्थ की सेवा भक्ति करें।

4. स्थिरता- जिन सिद्धांतों में स्वयं स्थिर रहे तथा अन्य को स्थिर करें।

5. भक्ति - जिन प्रवचन एवं सम्यक्त्व धारी महापुरुषों का आदर सत्कार एवं महिमा (गुणानुवाद) करें।

(धर्मसंग्रह अधिकार 22)

आठवें बोले सम्यक्त्व की प्रभावना-8

प्रभावना- जिस कार्य को करने से जैन सिद्धांत की उन्नति (महिमा) हो और जिससे लोग धर्म की ओर आकर्षित हों।

1. प्रावचनी- जिस काल में जितने सूत्र उपलब्ध हों उनका गहन अध्ययन कर अन्य जीवों को प्रतिबोध देकर धर्म की प्रभावना करें।

2. धर्मकथी- धर्मकथा सुनाने में चतुर होवें।

3. वादी- प्रत्यक्ष प्रमाण हेतु, दृष्टांतादि से अन्यमतियों से वाद करके धर्म को दीपावे-प्रभावना करें।

4. नैमित्तक- निमित्त ज्ञान से भूत, भविष्य और वर्तमान काल जाने।

5. तपस्वी- उग्र (कठिन) तपस्या करके धर्म की प्रभावना करे।

6. विद्यावान- अनेक विद्याओं का जानकार होवें।

7. प्रसिद्ध व्रती- प्रसिद्ध व्रत (ब्रह्मचर्य आदि चार खन्ध) लेवें।

8. कवि- शास्त्र के अनुसार कवितादि रच कर धर्म की प्रभावना करें।

(प्रवचन सारोद्धार)

नौवें बोले सम्यक्त्व के आगार- 6

आगार- आगार का मतलब है छूट, प्रतिज्ञा ग्रहण करते समय रखी हुई छूट को आगार कहते हैं। यदि व्रत ग्रहण करने वाला पहले ही अपने सामर्थ्य को ध्यान में रखकर छूट रखें और आवश्यकता के समय छूट का प्रयोग करें तो व्रत भंग नहीं होता और दोष भी नहीं लगता। जैसे महीने में 25 दिन रात्रि भोजन का त्यागी यदि शेष 5 दिन रात्रि भोजन करता है तो व्रत में दोष नहीं लगता।

(उपासक दशांग अ.1)

1. राज्याभियोग- राजा के दवाब से अन्यतीर्थी को वन्दना करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।

2. गणाभियोग- कुटुम्ब, जाति, पंच आदि के दवाब से अन्यतीर्थी को वन्दनादि करनी पड़े तो, सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।

3. बलाभियोग- बलवान के डर से अन्यतीर्थी को वन्दनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।

4. सुराभियोग- देव के डर से अन्य तीर्थी को वन्दनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोप नहीं लगता।

5. गुरु निग्रह- माता,पिता, गुरु आदि के आग्रह से अन्यतीर्थी को वन्दनादि करनी पड़े तो, सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।

6. वृतिकान्तार- दुर्भिक्ष काल में आजीविका कठिन हो जाए और न चाहते हुए भी अन्यतीर्थी को वन्दनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।

दसवें बोले सम्यक्त्वी की यतना - 6

यतना- सम्यक्त्व रुपी अनमोल धन को सुरक्षित रखने के उपाय को यतना कहते है।

1. आलाप- मिथ्यात्वी से विना कारण बोले नहीं किन्तु सम्यग् दृष्टि से विना बोलाये भी ज्ञान चर्चा करें।

2. संलाप- मिथ्यात्वी से विशेष भापण नहीं करे और सम्यग्दृष्टि से वार-वार अवश्य ज्ञान चर्चा करें।

3. दान- मिथ्यात्वी को गुरुबुद्धि से दान नहीं देवें, परंतु अनुकम्पा दान देने की तीर्थंकरादि की मनाही नहीं है।

4. मान- मिथ्यात्वी का अनावश्यक आदर-सम्मान नहीं करें किन्तु सम्यक्त्वी का बहुत आदर सम्मान करें।

5. वंदना- मिथ्यात्वी को वंदना नहीं करे किन्तु सुदेव सुगुरु को बारम्बार वन्दन करें।

6. गुणग्राम- मिथ्यात्वी की प्रशंसा नहीं करें किन्तु सम्यक्त्वी के गुणों की प्रशंसा करें।

(उपासक दशांग अ.1)

ग्यारहवें बोले स्थान - 6

स्थान- जिन मान्यताओं पर सम्यक्त्व टिका रहे उसे स्थान कहते है।

1. मूल (जड़)- धर्म रूपी वृक्ष की सम्यक्त्व रूपी जड़ है।

2. द्वार- धर्म रूपी नगर का सम्यक्त्व रूपी द्वार है।

3. नींव- धर्म रुपी महल की सम्यक्त्व रुपी नींव है।

4. मंजूषा- धर्म रुपी आभूषणों की सम्यक्त्व रुपी पेटी है।

5. दुकान- धर्म रुपी वस्तुओं की सम्यक्त्व रुपी दुकान है।

6. थाल- धर्म रुपी भोजन का सम्यक्त्व रुपी थाल है।

(प्रवचन सारोद्धार व अनेक ग्रंथ)

बारहवें बोले भावना- 6

भावना- जिन विचारों से सम्यकत्व पुष्ट बने उसे सम्यक्त्व की भावना कहते है।

1.जीव है- जीव है वह चेतन लक्षण से युक्त है।

2. जीव नित्य है- जीव द्रव्य, आदि (उत्पत्ति),अंत (विनाश) रहित सदा शाश्वत है।

3. जीवकर्ता है- जीव स्वयं आठ कर्मो का कर्ता है।

4. जीव भोक्ता है- जीव स्वयं आठ कर्मों का भोक्ता है।

5. मोक्ष है- भव्य जीव आठ कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते है।

6. मोक्ष के उपाय- सम्यग्ज्ञान, सम्यगूदर्शन, सम्यगूचरित्र और सम्यगूतप ये मोक्ष के उपाय हैं।

(प्रवचन सारोद्वार, अभिद्यान राजेन्द्र कोष)

2. तीर्थंकर पद प्राप्ति के 20 बोल

ज्ञाताधर्म कथा सूत्र अध्ययन 8 प्रवचन सारोद्धार द्वार 10 तथा आवश्यक सूत्र निर्युक्ति में विवेचन है कि इन बीस बोलों की आराधना करने से जीव कर्मों की निर्जरा करे, (कोड़ खपावे) उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करता है...।

1. अरिहंत भगवान की भक्ति उनके गुणों का चिन्तन और आज्ञा का पालन करते रहने से जीव कर्मों की निर्जरा करे, उत्कृष्ट रस जमे, तो तीर्थंकर नाम–कर्म का बन्ध करे।
2. सिद्ध भगवान की भक्ति और उनके गुणों का चिन्तन करने से....।
3. निर्ग्रंथ–प्रवचन रूप श्रुतज्ञान में अनन्य उपयोग रखने से....।
4. गुरु महाराज की भक्ति, आहारादि द्वारा सेवा और उनके गुणों का प्रकाश करने एवं आशातना टालने से....।
5. जाति–स्थविर (60 वर्ष या इससे अधिक की वय वाले)

   श्रुत–स्थविर (स्थानांग समवायांग के धारक)

   प्रव्रज्या – स्थविर (20 वर्ष या इससे अधिक की दीक्षा पर्याय वाले) की भक्ति करने से....
6. बहुश्रुत (सूत्र, अर्थ और तदुभय युक्त) मुनिराज की भक्ति करने से ....।
7. तपस्वी मुनिराज की भक्ति करने से....।
8. ज्ञान की निरन्तर आराधना करते रहने से ......।
9. सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करने से.....।
10. गुणज्ञ रत्नाधिकों का तथा ज्ञानादि का विनय करने से ....।
11. भावपूर्वक उभय काल षडावश्यक (प्रतिक्रमण) करते रहने से....।
12. मूलगुण और उत्तरगुणों का निर्दोष रीति से शुद्धता पूर्वक पालन करने से....।
13. सदा संवेग भाव रखने से अर्थात् शुभ ध्यान करते रहने से ....।
14. तपस्या करते रहने से.....।
15. भक्ति पूर्वक सुपात्र दान देने से....।

16. आचार्यादि दस की वैयावृत्य* करने से....।

17. सेवा तथा मिष्ट भाषणादि के द्वारा गुर्वादि को प्रसन्न रखने से और स्वयं समाधिभाव में रहने से....।

18. नवीन ज्ञान का अभ्यास करते रहने से.....

19. श्रुतज्ञान की भक्ति तथा बहुमान करने से....।

20. प्रवचन की प्रभावना करने (धर्म का प्रचार करने) से।

उपरोक्त बीस बोलों की उत्कृष्ठतापूर्वक आराधना करने से तीर्थंकर नाम–कर्म का बन्ध होता है। इस बन्ध के उदय वाले महापुरुष, तीर्थंकर बन कर मोक्ष–मार्ग का प्रवर्त्तन करते हैं और भव्य जीवों का कल्याण करते हैं।

2. पुण्यवान को प्राप्त उत्तम सामग्री

उत्तराध्ययन सूत्र अ.3, 17,18 में पुण्यवान जीवों को प्राप्त होने वाली दस प्रकार की उत्तम सामग्री का वर्णन किया गया है, जो जीव धर्म साधना करके देवलोक में जाते हैं, वे देवलोक के सुख तो भोगते ही हैं, परन्तु वहाँ की आयु पूर्ण कर के मनुष्य–भव में आते हैं, उन्हें पुण्य के फलस्वरूप उत्तम सामग्री प्राप्त होती है। वह इस प्रकार है –

1. क्षेत्र– ग्राम, जमीन आदि उत्तम स्थान, 2 वास्तु–रहने का भवन, 3. चांदी-सोना आदि उत्तम धातुएँ, 4, पशु–गायें, भैंसें, घोड़े आदि और नौकर-चाकर। इन चार स्कन्धों (समूहो) से भरपूर कुल में उत्पन्न होने का योग मिलता है।

2. अच्छे मित्रों का योग मिले। 3. अच्छे सगे–सम्बन्धियों का योग मिले।

4. उच्च गोत्र–आदरणीय एवं अच्छा खानदान मिले।

5. कान्तिवान् शरीर मिले। 6. आरोग्य शरीर मिले।

7. तीव्र एवं विमल बुद्धि मिले।

8. विनयवान् – विनीत– सबको प्रिय लगने वाला होए।

9. यशस्वी–(जिनकी प्रशंसा व्यापक हो) होवे।

10. बलवान्– (शक्तिशाली) हो।

---

*नोट - आचार्यादि 10 की वैयावृत्य निम्न प्रकार से की जाती है - 1. भक्त, 2. पान, 3. आसनदान, 4. उपकरण संपादन, 5. पाद प्रमार्जन, 6. वस्त्र, 7. भैषज्य, 8. मार्ग में सहायता करना, 9. दुष्ट चोर आदि से रक्षा करना, 10. गांवादि में प्रवेश करते समय पात्र (दण्ड) आदि ग्रहण करना 11-12-13 उच्चार, प्रश्रवण, श्लेष्म मात्रक समर्पण करना आदि।

कथा विभाग

1. भगवान ऋषभदेव

काल स्वरूप – वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे सुखम–दुःखम के तीन भाग में से दो भाग बीत जाने पर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के सभी पुद्गलों की उत्तमता में न्यूनता आ जाती है। इस उतरते आरे में मनुष्य का देहमान 500 धनुष तथा एक क्रोड़ पूर्व का आयुष्य रह जाता है। शरीर में 64 के स्थान पर 32 पसलियाँ रह जाती है। कालस्वभाव से कल्प वृक्ष द्वारा आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। इसलिये युगलिकों में परस्पर झगड़ा होने लगता है अतः व्यवस्था बनाये रखने के लिये 15 कुलकरों की उत्पत्ति होती है। पहले से तीसरे आरे की भूमि अकर्मभूमि कहलाती है। यहां के मनुष्यों की उत्पत्ति जोड़े से होती है तथा जोड़े से ही रहते हैं। अतः युगलिया कहलाते हैं।

ऋषभदेव का जन्म एवं बाल्यकाल – तीसरे आरे के अन्तिम भाग में अन्तिम कुलकर श्री नाभिराजा हुए, उनकी पत्नी का नाम मरुदेवी था। रानी मरूदेवी ने तीसरे आरे के 84 लाख पूर्व से कुछ अधिक समय शेष रहने पर 14 महास्वप्न देखे। इन्द्र ने आकर स्वप्न का अर्थ बताते हुए कहा यह बालक चौदह राजूलोक का स्वामी होगा। चैत्र कृष्णा अष्टमी को माता मरूदेवी ने युगल को जन्म दिया। इन्द्र, देवताओं द्वारा जन्म उत्सव मनाया गया। बालक के उरुस्थल पर वृषभ का शुभ चिह्न था तथा माता ने चौदह महास्वप्नों में सर्वप्रथम स्वप्न वृषभ का देखा था इसलिए माता–पिता ने पुत्र का नाम ऋषभ तथा साथ जन्मी कन्या का नाम सुमंगला रखा। पाँच धात्री अप्सराओं की सेवा में बालक ऋषभ आनन्दपूर्वक बढ़ने लगा।

ऋषभदेव का शरीर जन्म् से ही (1) स्वेद (पसीना) मल रोग से रहित सुन्दराकार स्वर्ण कमल के समान सुशोभित (2) रक्त और माँस गाय के दूध से भी उज्ज्वल एवं सुगन्धयुक्त (3) आहार निहार चर्म चक्षु के अगोचर (4) श्वासोश्वास पद्म कमल से अधिक सुगन्धित। इन चार अतिशय से युक्त था।

विवाह – उस समय विवाह पद्धति नहीं थी। सौधर्मेन्द्र ने भगवान को विवाह योग्य जानकर भगवान से विवाह सम्बन्धी लोक नीति प्रचलित करने का निवेदन किया।

श्री नाभिराजा एवं देवराज इन्द्र के परामर्श से ऋषभदेव का विवाह सुमंगला एवं सुनन्दा नाम की कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ। इस युग का यह प्रथम विवाह था तब से ही भरत क्षेत्र में विवाह विधि✿ प्रारम्भ हुई।

भरत बाहुबली तथा ब्राह्मी, सुन्दरी का जन्म – सुमंगला से परम प्रतापी पुत्र भरत तथा पुत्री ब्राह्मी हुए। भरत इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती हुए। दूसरी पत्नी सुनन्दा से महान् शूरवीर बाहुबली एवं पुत्री सुन्दरी हुए। इसके बाद सुमंगला के अनुक्रम से 49 युगल पुत्रों (98 पुत्रों) को जन्म दिया। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के भरत बाहुबली सहित 100 पुत्र तथा ब्राह्मी सुन्दरी 2 पुत्रियां थीं। जिस प्रकार अनेक शाखाओं में वृक्ष सुशोभित होता है उसी प्रकार पुत्र–पुत्री से ऋषभदेव सुशोभित थे।

कर्मभूमि का प्रारम्भ एवं राज्य स्थापना – जिस प्रकार प्रातःकाल दीपक का प्रकाश कम होता जाता है उसी प्रकार अकर्म भूमि के बीत जाने और कर्म भूमि के उदय से कल्प वृक्षों का प्रभाव क्षीण होने लगा। प्रकृति का वैभव कम होने लगा। कल्प वृक्षों का उपयोग करने वाली जनसंख्या में वृद्धि हो रही थी तथा वृक्ष फल कम देने लगे। शान्त प्रकृति वाले युगलिकों में कषाय भावना एवं संग्रह प्रवृत्ति पैदा हो गई थी। अब सुव्यवस्था एवं शान्ति के लिये सत्ताधारी शासक की आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों में नाभिराजा ने जननेतृत्व का भार ऋषभदेव को सौंपा। स्वर्गाधिपति शकेन्द्र ने ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया। ऋषभदेव ने जनता का नेतृत्व बड़ी कुशलता से किया। मानव जाति के प्रति उनके मन में बड़ी करूणा थी।

आपने जीवन उपयोगी साधनों के उत्पादन एवं संरक्षण का क्रियात्मक उपदेश दिया। वृक्ष सींचने तथा नये वृक्ष लगाने की विधि, अन्न उत्पादन की, अन्न पकाने की, उपभोग की व्यापार की, पात्र बनाने की, वस्त्र बनाने की, रोग चिकित्सा तथा सन्तान पालन पोषण आदि की सब पद्धतियाँ बताईं। गाँव कैसे बसायें, नगरों का निर्माण कैसे

✿ **नोट –** 1. एक बाल युगल ताड़ वृक्ष के नीचे खेल रहा था। भवितव्यता वश ताड़ का वड़ा फल टूटा और पुरूष बालक पर पड़ा और वह मर गया। बालिका अकेली रह गई। बालिका का नाम सुनन्दा था। सुनन्दा दिग् विमुढ़ हो गई। थोड़े दिन में सुनन्दा के माता–पिता भी मर गए। वह इधर उधर भटकने लगी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। कुछ युगल अकेली भटकती हुई बालिका को लेकर कुलपति नाभिराजा के पास गए। नाभिराजा ने उसे ऋषभदेव की पत्नी घोषित कर दिया।

हो, मकान कैसे बनाये जाये ये सभी बातें जनता को सिखाई। राजा ऋषभदेव के नेतृत्व में पहली नगरी विनीता बनाई गई, यही आगे चलकर अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध हुई। ऋषभदेव इस युग के प्रथम शिक्षा शास्त्री एवं आदि पुरुष हुए अतः आपका नाम आदिदेव, आदिनाथ, आदेश्वर आदि प्रसिद्ध हुए।

आपने साम, दाम, दण्ड, भेद ऐसे चार उपाय से राष्ट्रीय व्यवस्था कायम की। ऋषभदेव ने मनुष्यों को असहाय व प्रकृति पर निर्भर रहने के बदले पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाया। आपने स्त्रियों क़ी चौसठ एवं पुरूषों की 72 कलाएँ भिन्न–भिन्न रूप में सिखलाई। अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को 72 कलाएं, बाहुबली को हस्ति अश्व की और पुरुषों के लक्षण का बोध दिया। ब्राह्मी को दाहिने हाथ से अट्ठारह प्रकार की लिपि और सुन्दरी को बाँये हाथ से गणित, तोल, अक्षर ज्ञान, व्याकरण, छन्द काव्य आदि का ज्ञान दिया।

ऋषभदेव ने कर्म के आधार पर वर्णों की व्यवस्था की (1) क्षत्रिय (2) वैश्य (3) शूद्र। जो लोग शूरवीर थे, शस्त्र चलाने में पारंगत थे संकटकाल में प्रजा की रक्षा कर सकते थे, उन्हें क्षत्रिय पद दिया। जो व्यापार व्यवसाय और कृषि पशुपालन में निपुण थे, उन्हें वैश्य पद दिया। जिन्हें सेवा का कार्य सौंपा वे शूद्र कहलाये। चौथे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना भरत चक्रवर्ती ने की। जो लोग प्रजा को शिक्षा देने, समय–समय पर सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते, वे ब्राह्मण कहलाए।

यद्यपि उपरोक्त सभी कार्य सावद्य है किन्तु श्री आदिनाथ ने कर्मों के उदयानुसार अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने तथा जनकल्याण की भावना से किए।

वैराग्य एवं वर्षीदान – ऋषभ देव का हृदय प्रारम्भ से ही वैराग्य से परिपूर्ण था परन्तु जन–कल्याण की भावना से संसार में रह रहे थे। प्रभु के वैराग्य भाव को जानकर नव–लोकान्तिक देव प्रभु के समीप उपस्थित हुए और अपने जीताचार का पालन करते हुए निवेदन किया – "हे प्रभु ! भरत क्षेत्र में मोक्ष मार्ग रूपी धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करो। भव्य जीवों पर उपकार करो आपने लोक व्यवस्था कर जनता का ऐहिक उपकार तो कर दिया और नीति प्रचलित कर दी अब तीर्थ चलाकर परम सुख का मार्ग खोलो।"

संसार से विरक्त बने, आदिनाथजी ने अपने सामन्तों भरतादि पुत्रों को बुलाकर संसार त्याग की भावना व्यक्त की। अव मैं राज्य और परिवार का त्याग कर निर्ग्रन्थ बनना चाहता हूँ। जिससे जन्म–मरण का अनादि काल से लगा हुआ दुःख मिटकर शाश्वत और अव्यावाध सुख प्राप्त हो। मानव जाति को व्यवस्थित कर व्यवस्था को सुचारू रूप से

चलाने के लिए ऋषभदेवजी ने भरत को राज्य का भार सौंपकर उनका राज्याभिषेक करवाया। बाहुबली आदि 99 पुत्रों को योग्यतानुसार पृथक–पृथक देशों का राज्य दे दिया। उसके बाद साम्वत्सरिक (वार्षिक) दान देना प्रारम्भ किया। वर्षीदान में यह घोषणा की गई कि जिसे जो वस्तु चाहिये उसे वह दान में दी जाएगी। इन्द्रों के आदेश पर जृम्भक देवों ने द्रव्य जमा किया। प्रतिदिन प्रातः काल से लगाकर भोजन समय तक श्री आदिनाथजी एक करोड़ आठ लाख सौनेया का दान करने लगे। प्रभु ने एक वर्ष में कुल मिलाकर तीन अरब अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया।

दीक्षा– चैत्र कृष्ण अष्टमी का दिन था वर्षी दान का एक वर्ष पूर्ण हो चुका। शक्रेन्द्र द्वारा प्रभु का दीक्षाभिषेक किया गया। सुदर्शना शिविका पर प्रभु आरूढ़ हुए। देवताओं और मनुष्यों ने शिविका उठाई। जय–जयकार एवं मंगल गान के उद्घोष होने लगे। भगवान सिद्धार्थ नामक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे शिविका से उतरे। भगवान ने अपने वस्त्र आभूषण उतार दिये। देवताओं और मनुष्यों के बहुत बड़े समूह के सम्मुख प्रभु ने पंच मुष्टि लोच किया। प्रभु के केशो को शक्रेन्द्र ने अपने वस्त्र में ग्रहण किया। इन्द्र ने देव दूष्य वस्त्र प्रभु के कंधे पर रख दिया।

बेले के तप पूर्वक श्री नाभिनन्दन ने सिद्ध भगवान को नमस्कार करके सर्व पाप त्याग रूप दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण करते ही नारकी जीवों को भी क्षणभर के लिए शान्ति का अनुभव हुआ तथा प्रभु आदिनाथ को मनः पर्यव ज्ञान उत्पन्न हो गया। प्रभु के साथ चार हजार राजा भी दीक्षित हुए। भरत–बाहुबली सहित समस्त परिवार एवं पुरजन प्रभु को नमस्कार करके शोक संतप्त होते हुए बड़ी कठिनाई से लौट चले। इन्द्र और अन्य देवी देवता भी अपने–अपने स्थान पर चले गए।

साधुओं का पतन और तापस परम्परा – ऋषभदेवजी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम महामुनि थे। उन्होंने दीक्षा ग्रहण के साथ ही मौन करके कच्छ, महाकच्छ मुनियों के साथ विहार किया। उस समय लोग भिक्षा दान एवं भिक्षा वृत्ति से अनभिज्ञ थे। अतः निराहार रहते हुए कई दिन बीत गये। क्षुधा आदि परिषहों से दुःखी हुए और तत्व ज्ञान से अनभिज्ञ साधु आपस में विचार करने लगे हमारे से यह दुख सहन नहीं होता, भगवान बोलते नहीं– हम क्या करें? कैसे साधु धर्म का पालन करे ? आखिर भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी से घबराकर ये जंगल में कुटिया बनाकर रहने लगे। कन्दमूल वनफल खाकर गुजारा करने लगे। वल्कल से तन ढँकने लगे। भारत वर्ष में विभिन्न धर्मो एवं मतों का

इतिहास यहीं से प्रारम्भ हुआ और कन्दमूलादि का आहार करने वाले तापसों की परम्परा चली, 363 मत उस समय बने।

भगवान का पारणा – दानान्तराय कर्म के उदय से एवं गृहस्थों को आहार बहराने की विधि का ज्ञान नहीं होने के कारण भगवान ऋषभदेव ने बारह महीने तक निरन्तर निराहार एवं मौन रहकर संयम साधना की। भयंकर से भयंकर कष्ट को प्रसन्न चित्त से समभाव पूर्वक सहन किया। एक समय विचरते–विचरते प्रभु हस्तिनापुर पधारे। वहां बाहुबली के पौत्र तथा सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस नामक राजकुमार थे। प्रभु के आगमन का समाचार जानकर वे प्रभु के सम्मुख हर्षोल्लास के साथ उपस्थित हुए तथा वन्दन नमस्कार करके अपलक दृष्टि से प्रभु के श्रीमुख को निहारने लगे। उस समय प्रभु श्रेयांस कुमार के आँगन में पधार चुके थे। उसे विचार हुआ कि ऐसे महापुरूष को मैने पहले कभी देखा है। इस प्रकार विचार करते–करते उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। जाति स्मरण ज्ञान द्वारा निर्दोष भिक्षा विधि को जाना। तभी किसी ने आकर इक्षुरस के घड़े भेंट किये। श्रेयांस कुमार ने कल्पनीय रस ग्रहण की प्रार्थना की। प्रभु ने दोनों हाथ का पात्र बनाकर आगे किया। इस काल के आदि श्रमण श्री ऋषभदेव ने बेले के तप के साथ चैत्र शुक्ल 8 को दीक्षा ली थी जिसका पारणा एक वर्ष बाद वैशाख शुक्ल तृतीया को श्रेयांस कुमार के हाथ से हुआ, जिसे अक्षय तृतीया के रूप में आज भी त्याग तप के रूप में मनाया जाता है। पारणे से देवों एवं दानवों में प्रसन्नता छा गई। आकाश में देव दुंदुभि बजने लगी। देवगण अहोदानम् अहोदानम् का उच्चारण करने लगे, रत्नों की वृष्टि, पाँच वर्ण के उत्तम पुष्पों की वृष्टि, गन्धोदक की वृष्टि और वस्त्रों की वृष्टि हुई। इस प्रकार पाँच दिव्य प्रकट हुए। इसके बाद श्रेयांस कुमार ने सभी राजा नगरवासी, कच्छ, महाकच्छ आदि सभी तापसों को भिक्षा विधि का ज्ञान दिया।

भगवान का केवल ज्ञान तथा तीर्थ का प्रवर्तन – भगवन ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक मौनपूर्वक विविध प्रकार के तप करते हुए विचरण किया। प्रभु विचरण करते हुए वनीता नगरी के पुरिम ताल नाम के उपनगर के शकट मुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गए। ध्यान की धारा वढ़ती जा रही थी धर्म ध्यान से शुक्ल–ध्यान की ओर वढ़ते हुए चार घन घाति कर्मों को क्षय करके केवल – ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त किया। प्रभु को केवल ज्ञान उत्पन्न होते ही देव, इन्द्र आदि केवल ज्ञान महोत्सव मनाने उपस्थित हुए और समवसरण की रचना की। भरतेश्वर को प्रभु के केवल ज्ञान, केवल दर्शन के शुभ समाचार साथ ही आयुध शाला के सुदर्शन चक्र के प्रकट होने का सन्देश

प्राप्त हुआ। उन्होंने लौकिक भौतिक ऋद्धि को महत्व न देते हुए अलौकिक आध्यात्मिक ऋद्धि को महत्व दिया तथा पितामही (दादी) मरूदेवी के पास पहुंचे। प्रभुदर्शन की तैयारी होने लगी। माता मरूदेवी हाथी पर सवार हुई। माता ने समवसरण की रचना देखी तो मन्त्र मुग्ध हो गई। प्रभु के परम शान्त श्रीमुख पर उनकी दृष्टि स्थिर हो गई। माता की विचारधारा वेगवती हो गई। ऋषभ तो वीतराग हो गया है और वीतरागता परम सुख देने वाली है। पराये पर मोहित होना दुःखदायक है। इस प्रकार के विचारों से कर्म समूह झड़ने लगे। उसी समय हाथी पर सवार माता क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होते हुए केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर मोक्ष पधार गई। भरत महाराज को पितामही के वियोग का शोक हुआ वे तत्काल हाथी पर से उतरे राज चिन्ह त्याग कर समवसरण में गये। वहां प्रभु ने धर्मोपदेश दिया। चतुर्विध संघ की स्थापना हुई। प्रथम गणधर, चक्रवर्ती भरत के पुत्र ऋषभसेन हुए। सबसे प्रमुख आर्यिकाएँ ब्राह्मी सुन्दरी हुई।

भगवान ऋषभदेव के 84 गणधर 84000 साधु, ब्राह्मी सुन्दरी आदि 3,00,000 साध्वियां, श्रेयांस आदि 3,05,000 श्रावक, सुभद्रा आदि 5,54,000 श्राविकाएं थी।

मोक्ष— प्रभु ने भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया। मोक्षाभिलाषी अनेक मनुष्यों ने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा अनेक ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। भगवान विचरण करते हुए अष्टापद पर्वत पधारे। पद्मासन से विराजमान हुए। चौदह भत्त (अर्थात 6 दिन का उपवास) की तपस्या के साथ दस हजार साधुओं के साथ माघकृष्ण त्रयोदशी को मोक्ष पधारे।

प्रभु बीस लाख पूर्व कुमार अवस्था में रहे। तिरसठ लाख पूर्व राज्यासीन रहे। इस प्रकार 83 लाख पूर्व तक गृहस्थ अवस्था में रहे। एक हजार वर्ष तक छद्मावस्था में रहे। एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवल ज्ञानी तीर्थंकर रहे। कुल संयमी जीवन एक लाख पूर्व का रहा। कुल आयु चौरासी लाख पूर्व थी। जब तीसरे आरे के तीन वर्ष आठ मास और पन्द्रह दिन शेष रहे तब सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

भगवान ऋषभदेव जैन धर्म के ही नहीं विश्व की विभूति थे। वैदिक धर्म में भी ऋषभदेव को अवतार माना गया है। भगवान ऋषभदेव को श्रीमद् भागवत गीता (5/4/14) में साक्षात् ईश्वर कहा है। ऋग्वेद, विष्णुपुराण, अग्नि पुराण, भागवत आदि वैदिक साहित्य में भी उनका गुण कीर्तन आदर के साथ किया जाता है।

2. अर्जुनमाली : क्रूरता का दैत्य, करुणा का देवता

राजगृह में अर्जुन नामक मालाकार (माली) रहता था। नगर के बाहर उसका एक बहुत सुन्दर व्यावसायिक उद्यान था। उस उद्यान में उसके कुलदेवता मुद्गरपाणि यक्ष का प्राचीन मंदिर था।

अर्जुन बहुत सवेरे उठकर अपनी पत्नी बंधुमती के साथ उद्यान में जाता। विभिन्न रंगों व अनेक जातियों के फूलों को बीनता, उनके गुलदस्ते, गजरे, हार व मालाएँ बनाकर नगर में बेचता और अपनी आजीविका चलाता था।

एक बार राजगृह के कुछ युवकों की एक टोली जिसमें छह युवक थे, उद्यान में घुस आए। बंधुमती के सुकुमार सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अनाचार करना चाहा। मौका देखकर अर्जुन को रस्सियों से बाँध दिया, और फिर बंधुमती को घेरकर उसके साथ स्वच्छंद कामाचार किया। अपने सम्मुख दुष्टों का अत्याचार और पत्नी का दुराचार देखकर अर्जुन का खून खोल उठा। वह रस्सियों से बंधा था, क्या कर पाता? क्रोधावेश में उसने अपने कुलदेवता यक्ष को कोसना शुरू किया – "बचपन से मैं तुम्हारी पूजा उपासना करता आया हूँ, लेकिन आज जब मैं विपत्ति में फँसा तो तुम पाषाण की भाँति निश्चेष्ट खड़े मेरा अपमान होते देख रहे हो ? तुममें कुछ भी सत्व नहीं है।" अर्जुन की तड़फभरी पुकार का असर हुआ। यक्ष अर्जुन की देह में प्रविष्ट हो गया, अर्जुन के बंधन टूट गए। क्रोध और आवेश वश वह उन्मत्त-सा हो गया। मुद्गर हाथ में लिए दैत्य की भांति उठा और कामरत छहों पुरुषों एवं अपनी स्त्री (बंधुमती) की हत्या कर डाली। इस पर भी अर्जुन का क्रोध शांत नहीं हुआ। उसके मन में मनुष्यजाति के प्रति भयंकर घृणा का भाव जाग उठा, वह भूखे शेर की भांति प्रतिदिन मनुष्यों पर झपटकर छह पुरुष एवं एक स्त्री की हत्या करके ही दम लेता। कुछ ही दिनों में रमणीय उद्यान के परिपार्श्व में नर-कंकालों का ढेर लग गया। अर्जुन के आतंक से जनता का आवागमन बंद हो गया, गलियाँ और राजमार्ग सुनसान हो गए। राजगृह के द्वार बंद कर दिए गए और किसी भी व्यक्ति को नगर के बाहर अर्जुन की दिशा में जाने का सख्त निषेध कर दिया गया।

इस प्रकार 5 माह 13 दिन वीत गए तव ग्रामानुग्राम विचरते हुए भगवान महावीर राजगृह में पधारे। अर्जुन के आतंक के कारण हजारों श्रद्धालु दर्शन करने की उत्सुकता लिए भी मन मारे वैठे रहे। सुदर्शन नाम के एक दृढ़ श्रद्धालु श्रावक ने भगवान महावीर के

दर्शन हेतु उद्यान की ओर जाने का निश्चय किया। अपने संकल्प बल का सहारा लेकर वह नगर द्वार के बाहर निकला।

सुनसान गलियों में जैसे मौत नाच रही थी, किन्तु अभयमूर्ति सुदर्शन दृढ़ता के साथ आगे बढ़ा। मनुष्य को आया देखकर अर्जुन उन्मत्त की भांति मुद्‌गर लेकर उस ओर लपका। सुदर्शन ने यक्षाविष्ट अर्जुन को आते देखा तो वहीं ठहर गया, शान्ति से भूमि का प्रमार्जन कर बैठ गया। अरिहंत, सिद्ध भगवान को वंदन नमस्कार कर, व्रतों की आलोचना कर तथा उपसर्ग से मुक्त होने का आगार रख सागारी संथारा धारण कर लिया। अर्जुन का मुद्‌गर उठा का उठा रह गया। सुदर्शन की सौम्यता के समक्ष अर्जुन की क्रूरता परास्त हो गई। वह स्तब्ध हुआ, फिर भूमि पर गिर पड़ा। उपसर्ग समाप्त जानकर सुदर्शन अपने व्रत, प्रतिज्ञा से निवृत्त हुआ। अर्जुन को उठाया, उसकी क्रूरता और दानवता को करुणा और स्नेह के हाथों से दुलारा। अर्जुन सुदर्शन के चरणों में गिर पड़ा– अपने क्रूर कर्मों पर पश्चाताप करने लगा।

सुदर्शन ने कहा – अर्जुन ! घबराओ नहीं ! तुम भी मनुष्य हो। तुम्हारे रक्त में दानवता के संस्कार घुस गये थे, इसी कारण तुमने सैकड़ो निरपराध प्राणियों की हत्या कर डाली, अब तुम प्रबुद्ध हुए हो, तुम्हारे दानवीय संस्कारों में परिवर्तन आया है, चलो, मैं तुम्हें हमारे कल्याणदृष्टा देवाधिदेव के पास ले चलूँ।

अर्जुन सुदर्शन के साथ–साथ भगवान महावीर के समक्ष आया। प्रभु ने हृदयग्राही उपदेश की वृष्टि की जिससे अर्जुन के रक्त की दानवीय उष्मा शांत हुई, करुणा की रसधारा फूट पड़ी। पश्चाताप के आंसू बहाकर उसने प्रभु के समक्ष प्रायश्चित किया और उसी क्षण कठोर मुनिचर्या स्वीकार कर ली।

अर्जुनमुनि को देखकर लोग आवेश में आ जाते। यही है हमारे प्रिय स्वजन मित्रों का हत्यारा ! स्थान–स्थान पर लोग उसे मारते–पीटते, त्रास देते। भगवान महावीर ने अर्जुन को शिक्षामन्त्र दिया था– **तितिक्खं परमं नच्चा– तितिक्षा ही परम धर्म है।** अर्जुन ने इस मंत्र को साकार बनाया और छह मास की कठोर तपश्चर्या के बाद अनशन कर सब कर्मों से मुक्त हो, सिद्ध–बुद्ध दशा को प्राप्त हुआ।

अर्जुन जन्म से आर्य था, किन्तु उसमें अनार्यता के क्रूर संस्कार घुस गये थे। क्रूरता के उस दैत्य को समता का देवता बनाया – भगवान महावीर ने संस्कार शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा।

3. ढंढण मुनिवर

श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम 'ढंढण' था। वह अपनी रानियों के साथ भोगासक्त था किन्तु भगवान नेमिनाथ के उपदेश ने उसकी धर्म चेतना जागृत कर दी। वह भी दीक्षित हो गया और विधिपूर्वक संयम–तप का पालन करने लगा। वह सभी संतों के अनुकूल रहता और यथायोग्य सेवा करता। उसके अन्तराय कर्म का उदय विशेष था। वह आहारदि के लिए गोचरी जाता, परन्तु उसे प्राप्ति नहीं होती। कोई न कोई बाधा खड़ी हो जाती और उन्हें खाली लौटना पड़ता और ऐसा योग बनता कि अन्य जो साधु उनके साथ जाते, उन्हें भी खाली–हाथ लौटना पड़ता। उनकी ऐसी स्थिति देख कर कुछ मुनियों ने भगवान से पूछा :–

"प्रभो ! ढंढण मुनिजी श्रीकृष्ण के पुत्र हैं। निर्ग्रंथ धर्म का पालन कर रहे हैं। द्वारिकावासियों में न धर्म-प्रेम की कमी है न औदार्य गुण की न्यूनता है और न दुष्काल है। फिर इन ढंढण मुनि को आहारदि क्यों नहीं मिलता और इनके साथ जाने वाले साधु को भी खाली–पात्र क्यों लौटना पड़ता है ? जबकि अन्य सभी मुनियों को यथेष्ट वस्तु प्राप्त होती है ?

भगवान ने कहा :–

ढंढण मुनि के अन्तराय कर्म का विशेष उदय है। ये पूर्वभव में मगध देश के धान्यपूरक नगर के राजा के सेवक थे। 'पारासर' इनका नाम था। वे ग्राम्यजनों से राज्य के खेत जुतवाते और परिश्रम करवाते, किन्तु भोजन का समय होने पर और भोजन आने पर भी ये उन श्रमिकों को छुट्टी नहीं देते और उन्हें कहते – तुम हल से खेत में एक–एक चक्कर और लगा कर हाँक दो, फिर छुट्टी होगी। भोजन कहीं भागा नहीं जा रहा है।

वे भूखे प्यासे श्रमिक और बैल, मन-मार कर फिर काम खींचने लगते। इस प्रकार उन्हें भोजन में बाधक बन कर इन्होंने अन्तराय कर्म का बन्ध कर लिया। उसी के उदय से ये भिक्षा वंचित रहते हैं।

भगवान का निर्णय सुन कर ढंढण मुनिजी, अपने कर्म को नष्ट करने में विशेष तत्पर हो गए। उन्होंने भगवान के पास अभिग्रह लिया कि आज से मैं अपनी ही लब्धि (प्रभाव) से प्राप्त आहार ग्रहण करूँगा। दूसरे की लब्धि से उपलब्ध आहार नहीं खाऊँगा।

इस प्रकार अपने अभिग्रह को पालन करते और अलाभ–परिषह को जीतते हुए ढंढण मुनिराज शांतिपूर्वक विचरने लगे। एक बार श्रीकृष्ण ने भगवान से पूछा :-

"भगवन्! इन सभी मुनियों में कठोर एवं दुष्कर साधना करने वाले संत कौन है?"

भगवान ने कहा– यों तो संयम की कठोर साधना सभी संत करते हैं, किन्तु ढंढण मुनि सब में विशेष हैं। वे अलाभ–परिषह को शूर–वीरता के साथ शांतिपूर्वक सहन करते हैं।

श्रीकृष्ण, भगवान को वन्दन कर के लौट रहे थे। मार्ग में उन्हें भिक्षार्थ घूमते हुए ढंढण मुनि दिखाई दिये। वे तत्काल हाथी पर से नीचे उतरे और ढंढण मुनि की भक्तिपूर्वक वन्दना की और चले गए। श्रीकृष्ण ने जब मुनिजी को वन्दना की, तब एक श्रेष्ठी देख रहा था। उसे विचार हुआ कि ये महात्मा उत्तम कोटि के हैं, तभी महाराजाधिराज ने हाथी पर से नीचे उतर कर वन्दना की। मुनिजी भिक्षार्थ घूमते हुए उसके घर आये, तो उसने आदरपूर्वक मोदक बहराया। मुनिजी भिक्षा ले कर भगवान के पास आए और वन्दना कर के बोले- "भगवन्! आज मुझे भिक्षा मिल गई, तो क्या मेरा अन्तराय कर्म नष्ट हो गया?" भगवान ने कहा – "तुम्हारा अन्तराय कर्म अभी उदयगत है। तुम्हें यह भिक्षा कृष्ण के प्रभाव से मिली है। उनको वन्दना करते देख कर श्रेष्ठी प्रभावित हुआ और तुम्हे मोदक बहराया।" भगवान का निर्णय सुन कर ढंढण मुनि ने शांतिपूर्वक सोचा – "यह आहार मेरी लब्धि का नहीं है। मुझे इसे परठ देना चाहिये।" वे शुद्ध स्थंडिल–भूमि में गए और मोदक परठने लगे। भावना का वेग बढ़ा। पाप के कटुपरिणाम का विचार करते हुए शुक्लध्यान में प्रवेश कर गए। ध्यानाग्नि की तीव्रता में उनके घातीकर्म नष्ट हो गए। उन्होंने केवल ज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त कर लिया और भगवान को वन्दना कर के केवलियों की परिषद् में बैठ गए।



काव्य विभाग

1. श्री भक्तामर - स्त्रोत

(रचयिता : आचार्य श्री मानतुंग)

भक्तामर–प्रणत–मौलि–मणि–प्रभाणा–
मुद्योतकं दलित–पाप–तमो–वितानम् ।
सम्यक् –प्रणम्य जिन –पाद–युगं युगादा–
वालम्बनं भव–जले पततां जनानाम् ।।1।।

यः संस्तुतः सकल–वाङ्मय–तत्त्वबोधा–
दुद्भूत–बुद्धि–पटुभिः सुर लोक–नाथैः
स्तोत्रैर्–जगत् त्रितय–चित्त–हरै रुदारै :,
स्तोष्ये- किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।2 ।।

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित–पाद–पीठ ।
स्तोतुं समुद्यत–मतिर् – विगत – त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल–संस्थित–मिन्दुविम्ब ।
मन्यःक इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम? ।।3।।

वक्तुं गुणान् गुण- समुद्र ! शशांक-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया ?
कल्पान्त -काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ।4।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्-मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि-प्रवृतः !
प्रीत्याऽऽत्म-वीर्य मविचार्य मृगो मृगेन्द्र,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परि-पालनार्थम् ? ।5।

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास- धाम,
त्वद् भक्तिरेव मुखरी-कुरुते बलान्माम् ।

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतुः ।6।

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय-मुपैति शरीर-भाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलि-नील-मशेषमाशु,
सूर्यां शु-भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ।7।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो-हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ता-फल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ।8।

आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ।9।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त-मभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा ।
भूत्याश्रितं य इह नात्म-समं करोति ? ।10।

दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष- विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ? ।11।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान मपरं नहि रूपमस्ति ।12।

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्रहारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम् ?
विम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्-वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ? (13)

सम्पूर्ण-मंडल-शशांक-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास्-त्रिजगदीश्वर ! नाथ-मेकं,
कस्तान्-निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।14।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर-
नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ?
कल्पान्त-काल-मरुता चलिता-चलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ? ।15।

निर्धूम-वर्ति-रपवर्जित-तेलपूरः,
कृत्स्नं जगत्-त्रयमिदं प्रकटी-करोपि।
गम्यो नजातु मरुतां चलिताचलाम्
दीपोऽपरस् त्व-मसि नाथ ! जगत्प्रकाशः।16।

नास्तं कदाचि दुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टी-करोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महाप्रभावः,
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र ! लोके ।17।

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्प कान्तिं,
विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशांक-विम्बम्।18।

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा ?
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ !

निष्पन्न-शालिवन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्-जलधरै-र्जल, भार-नम्रैः ? ।19।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्-मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणा-कुलेऽपि ।20।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन् मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ? ।21।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी-प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुर-दंशु-जालम् ।22।

त्वा-मामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र ! पंथाः ।23।

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनंग-के तुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मे कं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ।24।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धि-बोधात्-
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्।
धाताऽसि धीर ! शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।25।

तुभ्यं नमस्त्रिभुव-नार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।

तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय।26।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैर-शेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश ?
दोषै-रूपात-विविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि।27।

उच्चैर-शोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम् ?
स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्
बिम्बं रवे-रिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ।28।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्
बिम्बं वियद् - विलस-दंशु-लता-वितानं,
तुंगो-दयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः।29।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कल-धौत-कान्तम्
उद्यच्छशांक - शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुर-गिरे-रिव शांत- कौम्भम्।30।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम्।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्-त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।31।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूतिदक्षः।
सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।32।

2. रत्नाकार पच्चीसी

शुभ के लिए के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजित चरण गत काम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में ॥1॥

संसार - दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश रत्नाकर प्रभो ! अनुपम कृपा-अवतार हो।
वीतराग ! हे विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,
तुम विज्ञ हो क्योंकि प्रभो ! मुझको अभय वर दीजिए ॥2॥

माता-पिता के सामने, बोली सुना कर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली ?
अपने हृदय के हाल को, वैसे यथोचित रीति से,
मैं कह रहा हूँ आपके आगे, विनय और प्रीति से ॥3॥

मैंने नहीं जग में कभी, कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावना मेरी हुई,अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि धार में ॥4॥

क्रोधाग्नि से मैं रात-दिन हा ! जल रहा हूँ हे प्रभो।
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूँ हे प्रभो !
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भांति हो, स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ ॥5॥

लोकेश ! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झींखता हूँ शोक में।
जग में हमारे से नरों का, जन्म् ही बस व्यर्थ है,
मानों जिनेश्वर ! यह जगत की पूर्णता के अर्थ हैं ॥6॥

प्रभु ! आपने निज मुख सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।

आनन्द-रस में डूब कर, सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण पड़ा बस है यही ॥7॥

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया,
हा ! खो गया वह भी विवश मैं नींद आलस में रहा,
अब बोलिए उसके लिए, रोऊं प्रभो ! किसके यहाँ ? ॥8॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को हंसाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया।
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज, हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो ! अपनी हंसी ॥9॥

पर दोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ,
लख कर पराई नारियों को, हा ! नयन दूषित हुआ।
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो।
किस भांति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो ! ॥10॥

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुःख राक्षसी,
हा ! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ, हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया ॥11॥

अन्य मंत्रों से परम, परमेष्ठी मंत्र हटा दिया,
सत्शास्त्र वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया,
दुःसंग से दुष्कर्म कर्त्ता, जान लेना तू मुझे,
लोकेश ! इस कारण मति भ्रम, मान लेना तू मुझे ॥12॥

हा तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान-वश मैंने किया फिर, देखिए किस पाप को।
वामाक्षियो के कुट कटाक्षों, पर सदा मरता रहा,
उनके विलासों का हृदय में, ध्यान भी करता रहा ॥13॥

3. अरिहन्त जय जय सिद्ध प्रभु जय जय

अरिहन्त जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय।
साधु जीवन जय जय, जिनधर्म जय जय ॥1॥

अरिहन्त मंगल, सिद्ध प्रभु मंगल।
साधु जीवन मंगल, जिन धर्म मंगल ॥2॥

अरिहन्त उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम।
साधु जीवन उत्तम, जिन धर्म उत्तम ॥3॥

अरिहन्त शरण, सिद्ध प्रभु शरण।
साधु जीवन शरण, जिन धर्म शरण ॥4॥

चार शरण दुःख हरण जगत में, और न शरणा कोई होगा ॥
जो भव्य प्राणी करे आराधन, उसका अजर अमर पद होगा ॥5॥

4. कर्मों का खेल

(तर्ज:- जरा सामने तो आओ छलिये)

जरा कर्म तो देखकर करिए, इन कर्मों की बहुत बुरी मार है
नहीं बचा सकेगा परमात्मा, फिर औरों का क्या एतबार है।

- बारह घड़ी तक बैलों को बांधा, छिंका लगा दिया खाने का
  बारह मास तक ऋषभ प्रभु को, आहार मिला नहीं दाने का
  इस युग के प्रथम अवतार है, बिन भोग्या न छुटी लार है। नहीं बचा..

- त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में, दास के कानों में शीशा डाला
  कर्म निकाचित बांधा वीर ने, तीर्थंकर थे पर ना टला
  खड़े ध्यान में वन के मंझार है, दिए कानों में खिले डार है। नहीं वचा..

- सौतेली मां बन सौत के सुत सिर, बाटिया चढ़ा के प्राण हरा
  निन्नाणु लाख भवों के बाद में, गज सुकुमाल बन कर्ज भरा
  चढ़ा सोमिल को क्रोध अपार है , डाले सिर पर धधकते अंगार है। नहीं वचा..

- किसी को मारे किसी को लूटे, काम करे अन्याई का
  जैसा करेगा वैसा भरेगा, लेखा है राई-राई का
  नहीं छोटे-बड़ों की दरकार है, चाहे कर ले तू जतन हजार है। नहीं बचा...

- पग-पग पे संयम रख तू वचन पे, बोले तो बोल भलाई का
  धर्म से प्रीत कर कर्मों को जीतकर, बनजा पथिक शिवराही का
  यह दुःख-सुख भरा संसार है, यहां कर्मों का ही व्यापार है। नहीं बचा...

5. वीर वन्दना

महावीर भगवान तुमको लाखों प्रणाम।
तीस वर्ष में दीक्षा लेकर,
बड़ी-बड़ी बाधाएँ सहकर,
डिगे नहीं भगवान! तुमको लाखों प्रणाम।
ब्रह्मज्ञान फिर सहज सुनाया,
जीवों को उपदेश सुनाया,
ऐसे त्रिशला नन्दन! तुमको लाखों प्रणाम।
हम सब बालक शरण तुम्हारी,
तारो प्रभु यह विनय हमारी,
प्यारे धर्म दुलारे! तुमको लाखों प्रणाम।
दीन दुःखी के सदा सहारे,
महावीर है देव हमारे।
करते सविनय वन्दन! तुमको लाखो प्रणाम।



सामान्य ज्ञान विभाग

1. लेश्या का स्वरूप

लेश्या :- आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को 'लेश्या' कहते हैं जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, जो योगों की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है, उसे लेश्या कहते हैं। छः लेश्या होती है - (1) कृष्ण लेश्या (2) नील लेश्या (3) कापोत लेश्या (4) तेजो लेश्या (5) पद्म लेश्या (6) शुक्ल लेश्या।

(1) कृष्ण लेश्या का लक्षण – पाँच आश्रवों में प्रवृत्ति करने वाला, तीन गुप्तियों से अगुप्त, छह काया की विराधना करने वाला, तीव्र भावों से आरम्भादि करने वाला, निर्दयता के परिणाम वाला, नृशंस, क्रूर, इन्द्रियों को वश में नहीं रखने वाला, दुष्ट भावों से युक्त जीव, कृष्ण लेश्या में परिणत होता है।

(2) नील लेश्या का लक्षण – ईर्ष्यालु, कदाग्रही, तपस्या नहीं करने वाला, अविद्या वाला, मायावी, निर्लज्ज, विषयों में गृद्ध, द्वेषी, मूर्ख, प्रमादी, रसलोलुप, विषयों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील, आरम्भ से निवृत्त नहीं होने वाला और क्षुद्र, तुच्छ तथा दुःसाहसिक, बिना विचारे काम करने वाला। इस प्रकार के भ ावों से युक्त जीव, नील लेश्या में परिणत होता है।

(3) कापोत लेश्या का लक्षण– वक्र वचन बोलने वाला, वक्र आचरण करने वाला, मायावी, मन की अपेक्षा वक्र, सरलता से रहित, अपने दोषों को छिपाने वाला, छलपूर्वक बर्ताव करने वाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, मर्म–भेदी वचन बोलने वाला, चोर मत्सरी दूसरों की उन्नति को सहन नहीं करने वाला इत्यादि भावों से युक्त जीव कापोत लेश्या में परिणत होता है।

(4) तेजो लेश्या का लक्षण– नम्र वृत्ति वाला (अहंकार रहित), चपलता रहित माया रहित, कुतूहल आदि नहीं करने वाला परम विनय भक्ति करने वाला, इन्द्रिय दमन करने वाला, स्वाध्यायादि में रत रहने वाला, विशिष्ठ तप करने वाला, धर्म में दृढ़ रहने वाला, पाप से डरने वाला, सभी प्राणियों का हित चाहने वाला, इत्यादि शुभ भावों से युक्त जीव, तेजो लेश्या में परिणत होता है।

(5) पद्म लेश्या का लक्षण – अल्प क्रोध वाला, अल्प मान वाला, अल्प माया वाला और अल्प लोभ वाला, शांत चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि करने वाला, तप करने वाला, परिमित बोलने वाला, उपशांत और जितेन्द्रिय। इन गुणों से युक्त जीव पद्मलेश्या में परिणत होता है।

(6) शुक्ल–लेश्या का लक्षण – जो पुरुष आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़ कर, धर्मध्यान शुक्ल ध्यान को ध्याता है, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, पाँच समितियों से युक्त, तीन गुप्तियों से गुप्त, अल्परागी या वीतरागी, उपशान्त और जितेन्द्रिय इन उत्तम भावों से युक्त जीव, विशिष्ट शुक्ल लेश्या में परिणत होता है अर्थात् ये सभी लक्षण विशिष्ट शुक्ल लेश्या वाले पुरुष में पाये जाते हैं।

आत्मा के जो परिणाम हैं, उनको भाव लेश्या कहते हैं और जिन परिणामों से आकर्षित होकर लेश्या के पुद्गल आत्मा को लगते हैं, उन पुद्गलों को द्रव्य लेश्या कहते हैं। लेश्याओं के नाम द्रव्य लेश्याओं के आधार पर ही रखे गये हैं।

छह लेश्याओं का स्वरूप समझाने के लिए दो दृष्टांत दिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं –

छह पुरुषों ने एक जामुन का वृक्ष देखा। वृक्ष पके हुए फलों से लदा था। शाखाएं नीचे की ओर झुकी हुई थीं। उसे देख कर उन्हें फल खाने की इच्छा हुई। वे सोचने लगे कि – किस प्रकार इसके फल खाये जाएं ? एक ने कहा – वृक्ष पर चढ़ने में गिरने का डर है, इसलिये इसे जड़ से काट कर गिरा दें और सुख से बैठकर फल खायें। यह सुनकर दूसरे ने कहा वृक्ष को जड़ से काट कर गिराने से क्या लाभ? केवल बड़ी–बड़ी डालियाँ ही क्यों नहीं काट ली जाएं ? इस पर तीसरा बोला डालियाँ नहीं काट कर छोटी–छोटी टहनियाँ ही क्यों न काट ली जाएं ? क्योंकि फल तो छोटी टहनियों में ही लगे हुए हैं। चौथे को यह बात पसन्द नहीं आई। उसने कहा– केवल फलों के गुच्छे ही तोड़े जाए। हमें तो फलों से ही प्रयोजन है। पाँचवे ने कहा – गुच्छे भी तोड़ने की जरूरत नहीं केवल पके हुए फल ही तोड़े जायें, हमारा तो पके हुए फलों से ही प्रयोजन है। यह सुनकर छठे ने कहा – जमीन पर काफी फल गिरे हुए हैं, उन्हें ही खा लें। अपना मतलब तो उन्हीं से सिद्ध हो जाएगा।

दूसरा दृष्टांत इस प्रकार है – छह क्रूरकर्मी डाकू किसी ग्राम में डाका डालने के लिए रवाना हुए। वे रास्ते में विचार करने लगे। एक ने कहा – जो मनुष्य और पशु मिलते हैं, उन सभी को मार देना चाहिए। यह सुनकर दूसरे ने कहा – पशुओं ने हमारा कुछ नहीं

बिगाड़ा है। हमारा तो मनुष्यों के साथ विरोध है इसलिये मनुष्यों को ही मारना चाहिए। तीसरे ने कहा – स्त्री हत्या महापाप है इसलिये स्त्रियों को नहीं मारना चाहिए। यह सुन कर चौथे ने कहा– शस्त्र रहित मनुष्यों पर वार करना उचित नहीं, इसलिए जिन पुरुषों के हाथ में शस्त्र हों, उन्हीं को मारना चाहिए। यह सुन कर पाँचवे डाकू ने कहा – शस्त्र को लिए पुरुष भी यदि डर के मारे भागते हों , तो उन्हें नहीं मारना चाहिए। जो शस्त्र ले कर लड़ने के लिए आवे, उन्हीं को मारना चाहिए। अन्त में छठे चोर ने कहा – हम लोग चोर हैं। हमें तो धन की जरूरत है इसलिये जिस प्रकार धन मिले, वही उपाय करना चाहिए। एक तो हम दूसरे लोगों का धन चुरावें और ऊपर से उन्हें मारें, यह ठीक नहीं है। चोरी तो वैसे ही पाप है, फिर हत्या का महा–पाप क्यों किया जाय?

दोनों दृष्टांतों के पुरुषों में पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा इस प्रकार आगे–आगे के पुरुषों के परिणाम क्रमशः अधिकाधिक शुभ हैं। इन भावों में उत्तरोत्तर संक्लेश की कमी और मृदुता की अधिकता है। छहों पुरुषों में पहले पुरुष के परिणाम को कृष्ण लेश्या यावत् छठे के परिणाम को शुक्ल लेश्या समझना चाहिए।

छहों लेश्याओं में कृष्ण, नील और कपोत–लेश्या, पाप का कारण होने से अधर्म लेश्याएं हैं। इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है। तेजो लेश्या, पद्म–लेश्या और शुक्ल लेश्या, ये तीन धर्म लेश्याएँ हैं। इनसे जीव सुगति में उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या में जीव मरता है अर्थात् मरते समय जो लेश्या होती है, उसी लेश्या को लेकर जीव परभव में उत्पन्न होता है। लेश्या के प्रथम और चरम समय में जीव परभव में नहीं जाता, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर जीव परभव में जाता है। मरते समय लेश्या का अन्तर्मुहूर्त्त बाकी रहता है इसलिये परभव में भी जीव उसी लेश्या से युक्त उ त्पन्न होता है।

पृथ्वीकाय, अपकाय, वनस्पति, भवनपति और वाणव्यन्तर में पहले की चार तथा तेऊकाय, वायुकाय विकलेन्द्रिय और नरक में पहले की तीन लेश्याएँ मिलती हैं। ज्योतिषी में तेजोलेश्या मिलती है। वैमानिक में पिछली तीन लेश्याएँ मिलती हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय तथा मनुष्य में छहों लेश्याएँ मिलती हैं तथा सिद्ध भगवान अलेशी होते हैं।



संथारा (समाधिमरण)

(महत्व, पच्चक्खान, विधि)

मृत्यु समग्र जीवन का निचोड़ है। साधक के जीवन भर की साधना की परीक्षा मृत्यु के अवसर पर होती है। जीवन की अंतिम वेला में आत्म शुद्धि पूर्वक व समता भाव रमण युक्त साधक समाधि मरण को प्राप्त करता है तो वह साधक जीवन की हर कसौटी पर खरा उतर जाता है। संथारा वैराग्यमय जीवन एवं समभाव की सर्वोच्च तप अवस्था है।

साधक (साधु और श्रावक) प्रतिदिन तीसरे मनोरथ में चिंतन करता है कि वह दिन मेरा धन्य होगा जब मैं आलोचनापूर्वक संलेखना संथारा करके समाधि मरण को प्राप्त होऊंगा। वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा।

ऐसा उदात्त चिंतन करने वाला साधक मृत्यु को महोत्सव के रूप में बदल देता है। ऐसे समाधि मरण को प्राप्त साधक वार-वार जन्म मरण को प्राप्त नहीं होता एवं जल्दी ही मोक्ष को प्राप्त करता है। यावज्जीवन संथारा ग्रहण करने से पूर्व साधक संलेखना व्रत अंगीकार करता है। जैन दर्शन में संलेखना का बहुत ही सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है। संलेखना अर्थात् सम्यक प्रकार से आहार, शरीर, उपाधि (वस्त्र, पात्र आदि) तथा कषाय का संकुचन (कृश, पतला) करना संलेखना है। साधक ममत्व भाव को छोड़ता हुआ आत्मचिंतन पूर्वक धीरे-धीरे संथारा की ओर अग्रसर होता है

संथारा दो प्रकार का होता है- 1. सागारी संथारा 2. यावज्जीवन संथारा

1. सागारी संथारा- आगार सहित यानि अचानक उपसर्ग, आतंक संकट असाध्य व्याधि आदि के उपस्थित होने पर या रात्रि सोते समय इसे धारण किया जाता है जिसमें संकट आदि टल जाने पर या निद्रा त्यागने पर नवकार मंत्र का ध्यान कर के सागारी संथारा पाल लिया जाता है। यदि उस बीच में मृत्यु आ जावे तो संथारा सहित समाधि मरण को प्राप्त होता है।

विधि:- सर्वप्रथम देव, गुरु, धर्म को वंदन करते हुए, व्रतों में लगे दोषों की आलोचना करके निम्न प्रतिज्ञा ग्रहण करनी चाहिए।

आहार शरीर उपधि पच्चक्खूं पाप अठारह।
मरण पाऊं तो वोसिरे, जीऊं जागूं पालूं तो आगार॥

2. यावज्जीवन संथारा- यह संथारा जीवन की संध्याकाल में यावज्जीवन के लिए ग्रहण किया जाता है। शरीर मरण धर्मा है। यह शरीर अब ज्यादा समय तक टिकने वाला नहीं है, ऐसा जानकर के साधक संथारा ग्रहण कर धर्म ध्यान में तल्लीन बन जाता है यानि देह से देहातीत हो जाता है इसमें साधक मृत्यु से न भयभीत होता है न मरने की इच्छा करता है और न ही उसके मन में देह पोषण की भावना रहती है।

विधि- सर्वप्रथम पूर्व या उत्तर दिशा सन्मुख होकर तीन बार वंदना करके "अहो भगवन्! संलेखना संथारा करने की आपकी अनुज्ञा है" ऐसा कहें फिर नमस्कार महामंत्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी बोलकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करें। णमो अरिहंताणं कहकर कायोत्सर्ग पालें तथा नमस्कार महामंत्र व ध्यान विशुद्धि का पाठ एक लोगस्स प्रकट कहकर बायां घुटना खड़ा करके दो बार णमोत्थुणं देकर आचार्य महाराज को वंदन नमस्कार करें। तत्पश्चात् बड़ी संलेखना का पाठ बोलकर संथारा का पच्चक्खाण करें।

ज्ञातव्य बिंदु -

1. तिविहार संथारा हो तो बड़ी संलखेना के पाठ में चउव्विहंपि की जगह तिविहंपि बोलें एवं "पाणं" शब्द नहीं बोलें तथा प्रासुक जल का सेवन करें (संथारा वालों के निमित्त से नहीं बनाएं)
2. सेवा करने वाले समलिंगी तथा संवर में रहकर, विधि अनुसार उच्चार पासवण आदि परठें।
3. सचित्त वस्तुओं का स्पर्श न करें।
4. संथारा लेने वाले खुले मुंह नहीं बोलें।
5. उभयकाल प्रतिक्रमण, बड़ी साधु वंदना, धर्म जागरणा एवं स्वाध्याय भजन आदि से आत्मा को भावित करते हुए संथारा के भावों को चिंतन करते रहें।
6. वस्त्र, पात्र आदि की मर्यादा रखें।
7. इस लोक, परलोक आदि के सुख की कामना न करते हुए तथा जीने व मरने की इच्छा न करते हुए आत्म समाधि में लीन रहें।
8. सांसारिक, पारिवारिक, व्यापारिक संबंधी कार्यों से पूर्णतः निवृत्त रहें।
9. मेरा किसी भी जीव के साथ वैर विरोध नहीं सभी जीवों के प्रति मैत्री का भाव है ऐसा उदात्त चिंतन प्रतिक्षण करते रहें।

संथारा आत्महत्या नहीं आत्मकल्याण का राजमार्ग है

जैनागमों में संथारे का महत्व एवं विधि बतलाई गई है। जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। संथारा आत्मा को आधि-व्याधि और उपाधि से मुक्त बनाने वाला एक विशिष्ट तप है। परन्तु संथारे को लेकर दुनिया में बड़ा ऊहा-पोह चल रहा है। जो महाशय जैन धर्म के मूलभूत अहिंसा आदि सिन्द्धान्तों से अनभिज्ञ हैं वह इसे सुसाइड (आत्महत्या) कहते हैं।

आत्महत्या और संथारे में अंतर

संथारा	आत्महत्या
1. संथारा तब किया जाता है जब जीवन फूल मुरझाया हुआ दिखाई दे। मृत्यु निकट हो।	1. आत्महत्या तब की जाती है जब जीवन लम्बा दिखे तथा दुःख का अन्त नहीं दिखे।
2. संथारा एक विशिष्ट तप है।	2. आत्महत्या महापाप दुर्गति का कारण है।
3. शरीर से जब विशेष धर्म क्रिया नहीं होती या कोई मारणान्तिक उपसर्ग आने पर सभी का कर्ज माफ कर झगड़े का निवारण कर क्षमायाचना कर संथारा किया जाता है।	3. दिवाला निकलना, प्रेम में असफल, परीक्षा में असफल, कर्ज होना, गृह क्लेश, झगड़ा होना आदि दुर्भावना आत्महत्या का कारण है।
4. संथारा करने वाले, समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव, क्षमाभाव रखते हैं।	4. आत्महत्या करने वाले के मन में आक्रोश, दुर्भाव होता है।
5. संथारा सार्वजनिक रूप से गुरुजनों या बड़े श्रावक-श्राविकाओं के मुख से या उनकी अनुपस्थिति में देव-गुरु-धर्म की साक्षी से किया जाता है।	5. आत्महत्या छिपकर, होशहवास के बिना अविवेकी अवस्था में साक्षी के बिना ही किया जाता है।
6. संथारा में मरने की इच्छा करना भी दोष है।	6. आत्महत्या करने वाला तत्काल मरना चाहता है।
7. जैन शास्त्रों में विष सेवन, फाँसी लगा कर, कुँए-नदी में डूबकर आदि मरण	7. आत्महत्या करने वाला विष सेवन, फाँसी लगाकर, [illegible]

को अज्ञान मरण बताया है। इसकी चाहना करना भी दोष बताया है।	कुंए-तालाब में डूबकर, ऊँचे स्थान से कूदकर आदि माध्यम से अज्ञान पूर्वक अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है।
8. संथारा में कई प्रकार की छूट होती है। उपसर्ग आदि टलने पर उसे पाल भी लिया जाता है।	8. आत्महत्या में कोई छूट नहीं होती। वह तड़फते हुए मरण को प्राप्त होता है।
9. संथारा एक आराधना है तथा महापुरुषों के द्वारा प्रशंसनीय है।	9. आत्महत्या दण्डनीय अपराध है।
10. संथारा का लक्ष्य आत्मशुद्धि और आत्मकल्याण होता है।	10. आत्महत्या करने वाले का कोई लक्ष्य नहीं होता है। वह वर्तमान दुःख से मुक्त होना चाहता है।
11. संथारा करने वाला शुभ भावों से देह छोड़ता हुआ सद्‌गति को प्राप्त होता है। वह भविष्य में सिद्ध बुद्ध मुक्त होता है अथवा महारिद्धि देव बनता है।	11. आत्महत्या करने वाला अशुभभावों से देह छोड़ता हुआ दुर्गति को प्राप्त होता है तथा कई जन्मों तक दुःख को प्राप्त होता है।
12. संथारा ज्ञानी और साहसी व्यक्तियों के द्वारा किया गया प्रशंसनीय कार्य है।	12. आत्महत्या अज्ञानी पुरुषों के द्वारा कायरता पूर्वक किया जाने वाला कुकृत्य है।
13. साधक प्रतिदिन प्रसन्नभाव से यह चिंतन करता है कि 'हे भगवन् वह दिन मेरा धन्य एवं कल्याणकारी होगा जिस दिन मैं अंतिम समय में संथारा स्वीकार कर देह का त्याग करूँगा।	13. जबकि आत्महत्या का चिंतन कोई भी व्यक्ति प्रतिदिन नहीं करता एकमात्र दुःखों से घबरा कर, ऐसा घृणित निर्णय ले लेता है।

उपरोक्त विवेचन से बिल्कुल स्पष्ट है कि -

संथारा आत्महत्या नहीं अपितु आत्मसाधना की एक कसौटी है। दोनों का आपस में कोई सामंजस्य नहीं है। वैसे भी संपूर्ण विश्व में किसी भी न्यायालय द्वारा किसी को मृत्यु दण्ड दिया जाता है तो उसे फाँसी, विष या बिजली के करंट के प्रयोग से मृत्यु देते हैं। अन्न-

पानी का त्याग करवा कर नहीं। महात्मा गाँधी सहित कई नेताओं ने कई बार आमरण अनशन किए, आज भी कई नेता ऐसा करते हैं। उसे आत्महत्या का प्रयास नहीं माना जाता, क्योंकि अन्न-जल का त्याग मृत्यु वरण का उपाय नहीं है। संथारे का आत्महत्या से तुलना करना अज्ञानता को दर्शाता है। साथ ही अनन्त तीर्थंकरों ने स्वयं इसे ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त किया है एवं मृत्यु के पूर्व ग्रहण करने का उपदेश दिया है। मरण भी एक कला है। अनेक धर्मों में जीवन जीने की कला तो बताई है लेकिन जैन धर्म में जीने और मरने दोनों की कला बताई है। अनेक आचार्यों, ऋषि मुनियों, कृष्ण महाराज की पटरानियों, श्रेणिक की रानियों एवं श्रावकों ने इस उच्च कोटि की साधना से जीवन को स्वर्ण सदृश निर्मल बनाया तथा सिद्ध गति को प्राप्त किया।

अतः मेधावी साधु-श्रावक, सकाम मरण (ज्ञान मरण) अकाम मरण (अज्ञान मरण) की तुलना करके इनमें से विशिष्ट सकाम मरण को स्वीकार कर मृत्यु को महोत्सव के रूप में बनाएँ।



समय

"समयं गोयम मा पमायए"

हे गौतम ! धर्म कार्य करने में एक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

दूसरी जगह भी कहा है -

सांस-सांस पर प्रभु भज, वृथा सांस मत खोये।
कुण जाने इन सांस का, आणा होय के ना होय ।।1 ।।

क्षण-क्षण, क्षण-क्षण करतां, जीवन बीता जाय।
क्षण-क्षण का उपयोग कर, बीता क्षण फिर ना आय ।।2 ।।

जो-जो क्षण बीत गया, शीश पकड़ क्यों रोय।
यह क्षण आया सामने, इसे वृथा मत खोय ।।3 ।।

क्षण निकमो रहनो नहीं, करनो आतम काम।
भणनो गुणनो सीखनो, रमनो ज्ञान आराम ।।4 ।।

अवसर बीत्यो जात है, अपने बस कछु होत।
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक-दीपक ज्योत ।।5 ।।

रात गंवाई सोवता, दिवस गवायो खाय।
हीरो जैसो हर क्षण है, कोड़ी बदले जाय ।।6 ।।



श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा, बोर्ड, बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा

(भाग चार) पूर्णांक : 100

समय : 3 सामायिक (सामायिक की : हाँ/ ना, कितनी : ....)

नोट : सामायिक नहीं करने वाले परीक्षार्थी के 3 अंक कम किए जाएंगे।

---

1. प्रतिक्रमण की विधि बिन्दुवार संक्षेप में लिखिए। 8

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – 8
   - (अ) आलोउं जं .... सज्झाओ।
   - (ब) तस्स धम्मस्स .... चउव्वीसं।
   - (स) साधु सती .... अनन्त।
   - (द) एवमहं आलोइय .... चउव्वींस।
   - (य) खमासमणाणं .... वोसिरामि।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –
   - (अ) चार छेद के नाम लिखिए। 2
   - (ब) आचार्य की आठ सम्पदा में प्रारम्भ की चार क्रम से लिखिए। 4
   - (स) चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ लिखिए। 4
   - (द) समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ लिखिए। 4
   - (य) पांचवें पद णमोलोए सव्वसांहूणं का सवैया लिखिए। 3

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –
   - (अ) समकित के लक्षण लिखिये। 5
   - (ब) समकित के कोई 3 दूषण, 3 भूषण व पाँच प्रभावना प्रारंभ के क्रम से लिखिए। 10
   - (स) तीर्थंकर पद की प्राप्ति के कोई 4 बोल लिखो। 4
   - (द) पुण्यवान को प्राप्त उत्तम सामग्री में से किन्हीं चार के नाम लिखो। 4
   - (य) पुण्यवान जीवों को प्राप्त होने वाली दस प्रकार की उत्तम सामग्री का वर्णन किस सूत्र के कौन-कौन से अध्ययन से लिया गया है। 2

5. निम्न पद्य पूर्ण कीजिए – 15
   - (अ) अल्प श्रुतं .... निकरैक हेतुः।
   - (ब) छत्र-त्रय ....

(स) माता-पिता के सामने .... प्रीति से।

6. (अ) भावलेश्या व द्रव्यलेश्या में अन्तर लिखो।

(ब) संथारा के कितने भेद हैं। लिखो।

(स) सिद्ध और जीव से सम्बन्धित सुभाषित लिखिए।

(द) सम्बन्ध जोड़ो-

1.	कृष्ण लेश्या	-	नम्र वृत्ति वाला, अहंकार, माया रहित
2.	नील लेश्या	-	वक्र वचन बोलने वाला
3.	कापोत लेश्या	-	अल्प क्रोध, अल्प मान, अल्प माया, अल्प लोभ वाला
4.	तेजो लेश्या	-	धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान में रमण करने वाला
5.	पद्म लेश्या	-	ईर्ष्यालु, कदाग्रही
6.	शुक्ल लेश्या	-	पांच आश्रय में प्रवृत्ति करने वाला

7. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिये

1. अक्षय तृतीया कब आती है तथा इसका महत्त्व क्या है ?
2. भगवान ऋषभदेव के कितने गणधर साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाएँ थीं ? लिखिये ?
3. ढंढण मुनि के अन्तराय कर्म पूर्वकृत किन कार्यों के कारण उदय में आए ?
4. अर्जुनमाली कितने पुरुष व कितनी स्त्रियों की हत्या प्रतिदिन करता था ?

श्री अखिल भारत वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

मुख्य उद्देश्य

- समता समाज की रचना।
- व्यसन मुक्त राष्ट्र का निर्माण।
- जीवदया, स्वधर्मी सेवा, मानव सेवा की विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन।
- जैन संस्कृति, धर्म, दर्शन और आचार के शाश्वत सिद्धान्तों का लोक भाषा में प्रचार।
- जन कल्याणकारी सहज-सुबोध साहित्य का निर्माण।
- सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि हेतु शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था।
- समाज में धार्मिक चेतना के अभ्युत्थान हेतु आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शैक्षणिक विकास के कार्य करना।
- धार्मिक परीक्षा शिविर व शिक्षा के माध्यम से स्वाध्यायी तैयार करना।
- जैन धर्म के विभिन्न पहलुओं को जानने हेतु प्रयासरत शोधार्थियों एवं विद्वानों को यथोचित सहयोग प्रदान करना।
- धार्मिक, आध्यात्मिक व नैतिक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित कर सम्यक् ज्ञान का प्रचार करना।